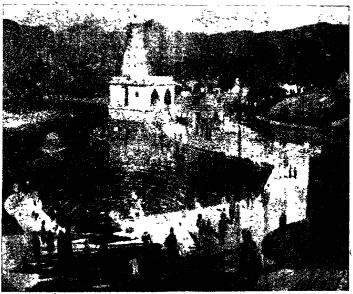
वर्ष ३३

वैदिक धर्म

अंक ५

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-सचित्र-मासिक-पत्र

वैशाख २००९



[बॉम्बे आर्ट सोसायटी, बम्बईकी कृपासे]

▲ मई १९५२ ▲

ऋषि दर्शन

ऋग्वेदमें अनेक ऋषियोंके दर्शन हैं। प्रत्येक पुस्तकमें एक एक ऋषिका तत्त्वज्ञान, संहिता-मंत्र, अन्वय, अर्थ और टिप्पणी है। निम्नलिखित ग्रंथ तैयार हुए हैं। आगे छपाई चल रही है—

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	मूल्य	१) रु.	२ मेधातिथि	ऋषिका	दर्शन	मूल्य	२) रु.
३ शुनःशेप	,,	,,	,,	१) ,,	४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	,,	१) ,,
५ कण्व	,,	,,	,,	२) ,,	६ सव्य	,,	,,	,,	१) ,,
७ नोधा	,,	,,	,,	१) ,,	८ पराशर	,,	,,	,,	१) ,,
९ गौतम	,,	,,	,,	१) ,,	१० कुत्स	,,	,,	,,	२) ,,
११ त्रित	,,	,,	,,	१) ,,	१२ संवनन	,,	,,	,,	०॥) ,,
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	,,	०॥) ,,	१४ नारायण	,,	,,	,,	१) ,,
१५ बृहस्पति	,,	,,	,,	१) ,,	१६ वागाम्भृणी	,,	,,	,,	१) ,,
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	,,	१॥) ,,	१८ सप्त	,,	,,	,,	०॥) ,,

१९ वसिष्ठ ऋषिका दर्शन मूल्य ७) रु. [प्रत्येकका डा. व्य. अलग रहेगा।]

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

अध्याय १ श्रेष्ठतम कर्मका आदेश १॥) रु. अध्याय ३१ एक ईश्वरकी उपासना अर्थात् पुरुषमेध १॥) रु.
,, ३६ सच्ची शांतिका सच्चा उपाय १॥) रु. अध्याय ४० आत्मज्ञान-ईशोपनिषद् २) ,,

डाक व्यय अलग रहेगा।

(३) संपूर्ण अथर्ववेदका सुबोध भाष्य मूल्य १६) रु. डा. व्य. ४) रु.

वेदके व्याख्यान

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद। ६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ये व्याख्यान तैयार हैं। दूसरे तैयार हो रहे हैं। [प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने और डा० व्य० =) दो आने]

उपनिषदोंके ग्रन्थ

१ ईश उपनिषद् मूल्य २) रु. डा. व्य. ॥)
२ केन उपनिषद् मूल्य १॥) रु. डा. व्य. ॥)
३ कठ उपनिषद् ,, १॥) रु. डा. व्य. ॥)
४ प्रश्न उपनिषद् ,, १॥) ,, ,, ,, ॥)
५ मुण्डक उपनिषद् ,, १॥) रु. डा. व्य. ॥)
६ माण्डूक्य उपनिषद् ,, ॥) ,, ,, ,, =)

मंत्री- स्वाध्यायमण्डल, आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी (सूरत)

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वैदिक धर्म

सहसंपादक
श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु. वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके ६॥) रु.

विषयानुक्रमणिका

वर्ष ३३ **वैदिक धर्म** अंक ५

क्रमांक ४१

▲ वैशाख, विक्रम संवत् २००९, मई १९५२ ▲

समदुःखसे संगठन

ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये।
सबाधो वाजसातये ॥

ऋ. ७।९४।५

(तौ हि) उन इन्द्र और अग्नि की सचमुच (शश्वन्तः विप्रासः) विशेष ज्ञानी जन (ऊतये इत्था ईळते) अपने संरक्षण के लिये इसी उत्तम रीतिसे स्तुति गाते हैं। (सबाधः) एक पीडासे पीडित हुए लोग (वाजसातये) अन्न प्राप्ति की स्पर्धामें उन्हींकी प्रशंसा करते हैं।

जो ज्ञानी दीर्घायु होनेकी इच्छा करते हैं, विशेष असाधारण ज्ञान विज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, समान दु ख, समान बाधा और समान पीडासे संतप्त हुए हैं, और उस दुःखसे अपना बचाव अच्छी तरहसे होनेका प्रयत्न भी करते हैं, वे अन्न तथा बलकी प्राप्तिके लिये इन्द्र और अग्निकी स्तुति गाते हैं, उनके गुणोंका वर्णन करते हैं, उन गुणोंका मनन और अपनेमें धारण करते हैं। उपास्यके गुणोंका धारण करते हैं जिससे उनकी सुरक्षा होती है और दुःखोंसे पार होते हैं।

ॐ

वसिष्ठ ऋषिका दर्शन

(१) इसमें '**वसिष्ठ ऋषि**' के सब मंत्रोंका संग्रह है। इसमें कुल मंत्र ९८५ हैं। वसिष्ठ ऋषि सब वैदिक ऋषियोंमें मुख्य ऋषि है। इसका तत्त्वज्ञान इस संग्रहमें आप देख सकते हैं।

(२) पृष्ठ १ से २२८ तक सब मूल मंत्र, उनका सरल अर्थ, प्रत्येक मंत्रके बोधवचन तथा उससे प्रकट होनेवाला मानवधर्म दिया है।

(३) पृष्ठ २८९ से ३०२ तक '**वसिष्ठ ऋषिका परिचय**' दिया है।

(४) पृष्ठ ३०३ से ३६८ तक '**वसिष्ठ ऋषिका तत्त्वज्ञान**' दिया है। इस लेखमें " **अपनी पवित्रता, सुशिक्षा, अज्ञानीकी निंदा, विद्या, सुमति, बुद्धि, सन्मार्ग, ज्ञान, प्रार्थना, जयविजय, शरीरसंवर्धन, अन्न, कीर्ति, यश, तरुण तरुणीका प्रेम, धनवाली स्त्री, पतिपत्नी, अपना पक्का घर, उत्तम पुत्र, दत्तक पुत्रका निषेध, ज्ञानी वीरपुत्र हो, गोरक्षण, दीर्घायु, संगठना, मातृभूमि, अग्रणी, राष्ट्रकी तैयारी, राष्ट्रका ध्वज, प्रजापालक राजा, राजसभा, दूतकर्म, नौका, शिल्पी, बल, धन, धनका संरक्षण, धनका दान, हवन, सुख शक्ति और कल्याण, युद्ध, युद्धनीति, उत्साही सेना, रथ, घोडे, वीर, शत्रुनाश, संरक्षक सैन्य** इत्यादि अनेक विषयोंपर वेदमंत्र देकर विषयका विवेचन किया है।

(५) इसके नंतर पृष्ठ ३६९-३९७ तक "**देवताओंमें आदर्श पुरुषका दर्शन**" कैसे किया जाता था यह बताया है।

(६) पृष्ठ ३९८-४३७ तक **वासिष्ठ मंत्रोंके सुभाषितोंका** संग्रह दिया है। इन पृष्ठोंमें करीब १२०० सुभाषित हैं। इनका उपयोग, व्याख्यानों, लेखों और ग्रन्थोंमें किया जा सकता है। ये सुभाषित सैंकडों विषयोंके हैं और वैदिक आचार विचार इनसे निश्चित हो सकता है। लेखक, उपदेशक, वक्ता, ग्रंथकारोंके लिये यह एक अपूर्व उपयोगी संग्रह है।

(७) आगे पृष्ठ ४२८ से ४५६ तक वसिष्ठ मंत्रोंकी सूची अकारानुक्रमसे है।

(८) इसके आगे पुनरुक्त मंत्र सूची है। वसिष्ठके मंत्रके भाग अन्य ऋषियोंके मंत्रोंमें कहां कैसे और किस रूपमें आये हैं वह इसमें दिया है।

इस तरह यह करीब करीब १००० मंत्रोंका अध्ययन करनेवालोंके लिये ४८० पृष्ठोंका उत्तम साधन ग्रंथ है। जो वेदका अभ्यास करना चाहते हैं उनके लिये यह अपूर्व सहायक ग्रंथ होगा।

'आनंदाश्रम'	निवेदनकर्ता
किल्ला पारडी (जि. सूरत)	श्री. दा. सातवळेकर
ता. १-४-५२	अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखांक १४]

(लेखक— श्री. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

ईश्वरके मार्गदर्शक गुण

पिछले दो लेखोंमें विनायकके बाल्यकाल एवं गणेशके राष्ट्रीय संगठनके कार्योंका वर्णन किया है तथा इन दोनों चरित्रोंसे यह निष्पन्न हुआ है कि ये दोनों चरित्र आज भी आदर्श बनने योग्य हैं। आज हममें 'विनायकी चतुर्थी' मनानेवाले बहुत हैं और 'गणपति पूजा' तो घर-घर होती ही है; किन्तु कोई भी इस देवचरित्रकी ओर फूटी आंखोंसे भी नहीं देखता। इसीलिये ये जीवनचरित्र मार्गदर्शक होनेपर भी मार्गदर्शनमें असफल होगये हैं !! हमारी अवनतिके अनेक कारणोंमें एक यह भी है।

देवचरित्रोंके आदर्श

देवोंका चरित्र हमारी मार्यादाओंसे परेकी बात है, यह कहकर हम उसका परित्याग कर देते हैं। हमारी यह आदत बहुत बुरी और आत्मघातकी है। हमें अपने समस्त देव और देवियोंके चरित्रोंका बारीकीसे अभ्यास करना चाहिये तथा जो बोध उससे मिले उसपर आचरण करना चाहिए। कमसे कम तरुण पीढीको तो इस ओर अवश्य ही ध्यान देना चाहिए।

गणेशके चरित्रद्वारा राष्ट्रीय-संगठनका जो बोध गत लेखमें हमें प्राप्त हुआ है, उस पद्धतिपर यदि हम अपने राष्ट्रका संगठन कर सकें तो उस संगठन द्वारा हमारा उद्धार हुए बिना कभी भी न रहेगा। साथ ही हमारी राष्ट्रीयताके मूलमें जो आध्यात्मिकता है उसका ज्ञान भी विश्वको हो जाएगा एवं इससे विश्वशान्ति स्थापन करनेमें सहायताही प्राप्त होगी।

भगवद्गीताका आदर्श

भगवद्गीतामें ईश्वरके जिस स्वरूपका वर्णन हुआ है। वह हमारे लिये किस प्रकार मार्गदर्शक बन सकता है यह हम देखें। प्रभु, भगवान्, ईश, ईश्वर, भूत, महेश्वर, पुरुष, पुरुषोत्तम आदि अनेक नाम ईश्वरके लिये आये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य नाम भी हैं तथा उनके गुणोंका भी वर्णन है। वे सर्वसाधारण मानवोंके लिये मार्गदर्शक हैं ही, किन्तु वे राजा और राज्याधिकारियोंके लिये भी मार्गदर्शक हैं। इसीका हम विचार करेंगे—

'त्वं प्रजापतिः' (गी० ११।३९) ईश्वर प्रजापति है। यह प्रजाका पालन करनेवाला है। ईश्वरके सभी कृत्य निर्दोष होते हैं। वह पूर्ण और निर्दोष है। इस प्रकारका यह पूर्ण और निर्दोष ईश्वर प्रजाका पालन किया करता है। हमारा अध्यक्ष, हमारा राजा, राज्याधिकारी प्रजापालनके कार्यमें दक्ष होने चाहिये। अपने अपने नियत कर्मोंमें वे तत्पर होने चाहिये। अपने कार्यको निर्दोष करनेकी पराकाष्ठा होनी चाहिए।

मा-बाप सरकार

यह ईश्वर 'पिता, माता, धाता, भर्ता, साक्षी, गति और पवित्र (गी० ९।१७-१८) है। पिताके समान वह सबका पालन करता है, माताके समान सबपर उसका प्रेम है। वह सबका धारण करता है, सबका भरणपोषण करता है और सबके चरित्रपर दृष्टि रखता है, वह पवित्र है एवं सबका अन्तिम आश्रय भी वही है। राज्यके अध्यक्ष, राजा अथवा अधिकारियोंको भी ऐसा ही होना चाहिये। पिताके समान उन्हें प्रजा-पालन करना चाहिए। कठोर अनुशासनका पालन करानेपर भी माताके समान प्रेम करना चाहिए। सभी प्रजाको मौकेपर आश्रय मिलना चाहिये, प्रजाके भरणपोषणकी व्यवस्था करनी चाहिए, साक्षीरूपसे सबके व्यवहारोंको देखना चाहिए और स्वयं पवित्र रहना चाहिए। पवित्रका अर्थ यह है कि वह किसीसे रिश्वत न ले, काळेबाजारवालेको सहायता न करे, गुण्डोंको सहायता

देकर सज्जनोंको कष्ट न दे। इस प्रकार आचरणकी पवित्रता रखनी चाहिए। आज भी हमें और हमारे राज्याधिकारियोंको यह बोध ईश्वरके वर्णनद्वारा प्राप्त हो सकता है और वह उन्हें अङ्गीकार करना चाहिए।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय। (गीता ४।८)

इस प्रकार ईश्वर कह रहा है कि मैं संसारमें आकर (१) सज्जनोंकी रक्षा, (२) गुण्डोंका नियन्त्रण, और (३) राज्यकी प्रजाके व्यवहारकी सुव्यवस्था किया करता हूँ। राज्यके अधिकारियोंको भी यही करना है। राष्ट्रमें जो सज्जन हों उनकी रक्षा होनी चाहिए। जो गुण्डे हों उन्हें दण्ड देकर अथवा अन्य उपायोंसे वशमें रखना चाहिए। राष्ट्रमें जो सज्जन होते हैं वे ही निर्बल हुआ करते हैं। संस्कृतिका जहाँ जितना अधिक प्रचार होगा वहाँ उतनी अधिक निर्बलता रहती है। दूसरी ओर गुण्डे मनमाना किया करते हैं। अर्थात् स्वभावतः ये गुण्डे सज्जनोंको त्रास दिया करते हैं। अतः सरकारका यह मुख्य कर्तव्य हो जाता है कि गुण्डोंको दण्ड देकर सज्जनोंकी रक्षा करे। इसी प्रकार 'धर्मकी स्थापना' उनके द्वारा होनी चाहिए।

धर्मसंस्थापनाका क्या अर्थ ?

धर्मसंस्थापनाका अर्थ नवीन धर्मपंथकी स्थापना न होकर राष्ट्रमें गुण्डोंके उपद्रवोंको कम करके व्यवसायकी तथा व्यापार-व्यवहारकी अर्थव्यवस्थाकी घडी ठीक ठीक और स्थायीरूपमें बिठाना है। ज्ञानी लोग ज्ञानका प्रसार कर सकें, शूरवीर राष्ट्रकी उत्तमतासे रक्षा कर सकें, व्यापारी व्यापार-व्यवहार कर सकें, कृषि और पशुपालन हो सके और कारागिरोंको अपनी कारीगिरीकी उन्नति करनेका अवसर मिले, ऐसी व्यवस्था करनेका अर्थ है धर्मकी संस्थापना।

इस व्यवस्थाका राष्ट्रमें निर्माण करना और उसे स्थायित्व देना ही धर्म-स्थापना है। चारों वर्णोंके धर्म एवं व्यवहार ठीक चलने चाहिये। एक वर्णके व्यवहारपर दूसरेका आक्रमण न हो, इसे देखना राज्यव्यवस्थाका कार्य है। इसीका नाम है—

'शाश्वत धर्म गोप्ता' गीता ११।१८

यही शाश्वत धर्मका संरक्षण है। चार वर्णोंके जो कर्तव्य व्यवसाय निश्चित हुए हैं, उनमें अव्यवस्था न होनी चाहिये। यदि यह व्यवस्थित हुआ तो सबका योगक्षेम ठीक चलेगा और यदि वह न चला तो बेकारी बढकर भुखमरी बढ जाएगी। इस भुखमरीको टालना चाहिये। यही कार्य 'धर्मसंस्थापना' है। धर्मसंस्थापनाका अर्थ जैन-बौद्ध-ईसाई या मुसलमानी धर्मके प्रसारको प्रोत्साहन देना या उनपर पाबन्दी लगाना नहीं है। राष्ट्रकी आर्थिक व्यवस्थाको सुधारना, उसकी नींव मजबूत करना और प्रत्येक कार्यकर्ताके लिये काम और उसका पारिश्रमिक देनेकी व्यवस्थाका ही नाम 'धर्म संस्थापना' है। यह सब करना सरकारका ही कर्तव्य है।

साधु-संन्यासी अथवा शंकराचार्य धर्मकी जागृति किया करते हैं। अर्थात् व्याख्यान देते हैं; किन्तु व्याख्यान देने मात्रसे धर्मसंस्थापना नहीं हो जाती। धर्म संस्थापना तो स्वयं रामने शत्रुओंका विनाश करके तथा राज्यका संचालन करके की थी। श्रीकृष्णने भी पाण्डवोंको खडा करके उनके द्वारा आततायियोंका पराभव करवाया और धर्मकी संस्थापना की। उस धर्मसंस्थापनाका यह स्वरूप नहीं था कि उन्होंने नवीन धर्मपंथकी स्थापना की हो अपितु उसका तो स्वरूप यह था कि राष्ट्रके चारों वर्णोंकी उन्होंने सुव्यवस्था की। सज्जनोंपर होनेवाले गुण्डोंके आक्रमणको दूर किया और उनकी सुरक्षा की। यह सुरक्षाकी व्यवस्था सरकारकी ओरसे जिस प्रमाणमें होगी उसी अनुपातसे राष्ट्रकी आर्थिक घडी ठीक बैठ सकती है। ईश्वरने स्वयंके लिये भी तीन कार्योंका निर्देश करके राज्यकर्ताओंके लिये यह उत्तम उपदेश दिया है। इस उपदेश पर थोडा मनन किया जाए तो यही राज्यक्षेत्रके लिये भी उपयोगी सिद्ध होगा। क्योंकि किसी एक व्यक्ति द्वारा यह इस प्रकारकी व्यवस्था बननी सम्भव ही नहीं है। यदि कोई महात्मा भी करे तो उसका स्थायी रहनाभी सम्भव नहीं है।

आज समस्त राष्ट्रमें पक्षोंकी राजनीति काम करती है। अपने पक्षका आदमी सज्जन और दूसरे पक्षका आदमी दुर्जन, ऐसा खुल्लम खुल्ला कहा जाता है। किन्तु यह भाव गलत है कि अपने पक्षमें आते ही मनुष्य सज्जन होजाता है। किन्तु आजका व्यवहार तो यह इस प्रकारसे पक्षविशिष्टताका है और यह बडे दुर्भाग्यकी बात है। इस

कारण ढोंगी आदमी सरकारी पक्षमें घुस जाते हैं, अधिकारारूढ हो जाते हैं तथा प्रजाको लूटते हैं एवं जो जो न करना चाहिए वह वह करने लगते हैं। इससे लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। ऐसा न होनेके लिये भगवानने अपने और अपने भक्तोंके गुणोंका वर्णन किया है। वह इस प्रकार है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
गीता. १२।१३

यस्मान्नोद्विजते लोकः लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो य. स च मे प्रियः ॥१२।१५
समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
९।२९

किसीका भी द्वेष न करनेवाला, सबके साथ मित्र भावसे रहनेवाला एवं अन्तःकरणमें करुणा धारण करनेवाला, लोग जिससे द्वेष नहीं करते तथा जो लोगोंका द्वेष नहीं करता। हर्ष, क्रोध, भय, उद्वेग जिसमें नहीं है वही मुझे प्रिय है। मैं सबके साथ समभावसे रहता हूँ। मेरे लिये एक प्रिय तथा दूसरा द्वेष्य नहीं है। अपने पक्षका होनेके कारण ही कोई प्रिय नहीं होता। और दूसरेके पक्षका होने मात्रसे ही कोई अप्रिय नहीं बन जाता। राज्यके अधिकारियों एवं सरकारकी भी यही विचारधारा होनी चाहिए। तभी उस राज्यमें सज्जनोंका परित्राण एवं दुर्जनोंका विनाश हो सकता है। अन्यथा अपने पक्षके किसी आदमीके खूब रिश्वत खालेनेपर भी वह श्रेष्ठ माना जाय और दूसरे पक्षके आदमी कितने ही श्रेष्ठ कर्म करें तब भी वे दण्डनीय माने जांय ऐसा होगा। ऐसी वृत्ति होनेपर यह निश्चित रूपसे समझ लेना चाहिये कि वहाँ न्याय नहीं मिल सकता। गीताने 'समदर्शन' होनेका जो उपदेश दिया है वह यद्यपि सबके लिये है तथापि वह राज्यके अधिकारियोंके लिये विशेष रूपसे है। क्योंकि यदि वे ही विषम भाव धारण करनेवाले होंगे तो उससे जनतामें अधिक कष्ट होनेकी सम्भावना रहती है। अतएव विशेषतः राज्याधिकारियोंको तो समदृष्टिका होनाही चाहिए।

कविं पुराणं अनुशासितारं, सर्वस्य धातारं
तमसः परस्तात् गी० ८।९

परमेश्वर ज्ञानी, पुराण पुरुष, सबका अनुशासिता, सबका आधार एवं अन्धकारसे परे है। राष्ट्रका अधिपति, राजा, शासक एवं राज्याधिकारियोंको भी ज्ञानी होना चाहिये, अनाडी न होना चाहिये (पुरा अपि नव) प्राचीन विचारोंके साथ नवीन विचारोंकी संगति करनेवाले, प्राचीनसे प्राचीन होनेपर भी नयेसे नये होने चाहिये, अनुशासनका पालन करनेवाले होने चाहिये, समस्त प्रजाको आधार देनेवाले और पक्षपातरहित होने चाहिये। प्रकाशके मार्गसे आगे जानेवाले अर्थात् अंधकारपथमें न भटकनेवाले, जिन्हें स्वयं मार्ग दिखाई देता है तथा जो दूसरोंका मार्गदर्शन कर सकते हैं ऐसे राज्यशासक होने चाहिये!

ये विशेषण कितनी उपयुक्तताके साथ राज्यशासकोंके लिये प्रयुक्त हो सकते हैं, इसका विचार पाठकोंको करना चाहिये। यदि राज्यशासक ऐसे न होकर इनके विरुद्ध अज्ञानी, प्राचीनको ही चिपके रहनेवाले अथवा केवल नवीन विचारोंके ही अनुगामी, स्वय अनुशासनका जरा भी पालन न करनेवाले, प्रजाको आधार न देनेवाले और स्वयं अंधकारमें भटकनेवाले, हुए तो क्या होगा? इसकी कल्पना पाठक ही करें।

पवित्र अधिकारी

'ज्ञानतपसापूता मद्भावमागताः' (गीता ४।१०)

ज्ञान तपसे जो पवित्र होते हैं वे ही ईश्वरत्वको प्राप्त होते हैं। यह परीक्षण कितना श्रेष्ठ है, इसे देखिये। ईश्वर भावका अर्थ शासकभाव। राज्यमें शासन करनेवाले पदोंपर ज्ञानसे शुद्ध एवं तपसे पवित्र जो होंगे वे ही नियुक्त किये जांय। ऐसे अधिकारियोंके होनेपर ही राज्यशासन पवित्र होगा। वह मेरे पक्षका अथवा मेरा सगासम्बन्धि है, इसीलिये केवल मात्र यदि वह शासकके स्थानपर नियुक्त हुआ तो कितना भारी अनर्थ होगा इसकी साक्षी इतिहास दे सकता है। अतः गीताके ये आदेश राज्यशासनकी परीक्षा करनेके लिये हैं और यह बात निःसन्देह तथ्यपूर्ण है। ऐसी परीक्षा कर लेनेके पश्चात् राज्याधिकारियोंकी नियुक्ति होनी चाहिये तभी वे योग्यशासक सिद्ध हो सकते हैं, इसमें तिलमात्र भी शंका नहीं है।

सेनापति

'अनन्तवीर्य अमितविक्रम' गीता ११।४०

अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे युक्त होनेके कारण समर्थ एवं अनेक पराक्रम करनेवाला ईश्वर है। राज्यके शासकोंको

भी इसी प्रकार समर्थ और पराक्रमी होना चाहिये। विशेषतः सेनापति एवं संरक्षण दलके अधिकारियोंको तो ऐसा ही होना चाहिये। तभी वे अपने अपने कार्य उत्तमतासे कर सकते हैं।

' भूतभर्तृ ग्रसिष्णु प्रभविष्णु ' (गी. १३।१६)

सबका भरणपोषण करनेवाला, दुष्टोंका दलन करनेवाला और सबपर प्रभाव डालनेवाला ब्रह्म है। इसी प्रकार राज्य शासनको भी प्रजाजनोंकी अन्नजलकी व्यवस्था करके उनका पालन, भरण पोषण करनेवाला, दुष्टोंका दलन करनेवाला और सबपर प्रभाव डालनेवाला होना चाहिये। ईश्वरका वर्णन जिस प्रकार उसके विश्वशासनका द्योतक है उसी प्रकार वह हमारे राज्यशासनके लिये भी मार्गदर्शक हो सकता है। ईश्वरका इस समस्त विश्वपर अद्भुत एवं निर्दोष शासन चल रहा है। मानवी शासन उतना निर्दोष नहीं हो सकता, यद्यपि यह सत्य है तथापि मानवी शासकोंको अपने सामने ईश्वरके इस शासकीय आदर्शको रखना चाहिये और अपने शासनको भी तद्वत् बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

प्रजाको सब कुछ करना चाहिये

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि। (गीता १३।२९)

प्रकृति ही सम्पूर्ण कार्य किया करती है और ईश्वर कूटस्थ द्रष्टा है। इसी प्रकार यहाँ राज्यशासनमें प्रकृतिको-प्रजाको-अपने समस्त शासकीय कार्य अपने प्रतिनिधियों द्वारा करवा लेने चाहिये। प्रजाको ही यह व्यवस्था करवा लेनी चाहिये और राष्ट्रशासकको द्रष्टा मात्र रहना चाहिये, एक निरीक्षकके रूपमें।

नगरीकी किलेबन्दी

' नवद्वारे पुरे ' (गीता ५।१३) राजधानी और बडे शहर किलेबन्दीसे युक्त होने चाहिये तथा उसके नौ दरवाजे होने चाहिये। अनेक स्थानोंपर (पुरं एकादशद्वारं) ग्यारह दरवाजे होने चाहिये, ऐसा कठ उपनिषदमें वर्णन है (अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूः) आठ चक्र एवं नौ द्वारोंवाली देवोंकी नगरी (अयोध्या) बनाकर अजिंक्य बनानी चाहिये। ये इस प्रकारके ब्रह्मनगरीके वर्णन हैं। इसी प्रकारसे देवोंने अपने नगरोंकी रचना की है। देव जैसा करते हैं वैसा ही मनुष्योंको करना चाहिये। देवोंने जिस प्रकार नगर बसाये वैसे ही मनुष्योंको भी अपने नगर अभेद्य किलेबन्दीसे युक्त बसाने चाहिये। वेदोंमें एवं अध्यात्मग्रन्थोंमें ब्रह्मनगरीके वर्णन किलोंके समान हैं। यह उपमा मनुष्योंको नगर रचनाका आदर्श बताती है।

परमेश्वर ' पुरुषोत्तम ' है। मनुष्योंको भी मनुष्योंमें श्रेष्ठ बनना चाहिये। पुरुषका पुरुषोत्तम, नरका नारायण बनना है। ईश्वरीय वर्णनके समान हम जितना अधिक अपना वैयक्तिक एवं सामुदायिक आचरण कर सकेंगे उतने ही अधिक हम पुरुषोत्तम या नारायणके समीप पहुँच सकेंगे। यही ' राजविद्या ' है और यही ' राजगुह्य ' है। अध्यात्म विद्याके आधारपर आर्योंका समस्त जीवन अवलम्बित था। अध्यात्मतत्वोंके अनुसार वे आचरण किया करते थे। इसी लिये भारतीय संस्कृति अध्यात्म तत्वोंपर अवलम्बित है, ऐसा कहा जाता है। उसीका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। राजनीति जीवनका एक अङ्ग है और वह इस प्रकारसे अध्यात्मतत्वपर अवलम्बित है।

अनुवादक-महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

हिन्दी साहित्य द्वारा

सामाजिक-सदाचारके प्रचारकी सम्भावना

(लेखक- स्वामी शिवानन्द सरस्वती, आनन्द कुटीर)

प्रत्येक जाति अपने धर्म और अपनी संस्कृतिको विशाल और चिरस्थाई बनाना चाहती हैं। उस जातिके प्रत्येक व्यक्तिमें यही भावना प्रबल रहती है कि वह अपनी विचारधाराको मनुष्य जीवन से संवलित कर दे और इसकेलिए समय-समयपर उस जाति या सम्प्रदाय या राष्ट्रमें विभिन्न-क्षेत्रोंकी योग्यतासे संपरिनिष्ठ आदर्शवादी व्यक्ति आविर्भूत हुआ करते हैं, जो तत्कालीन मनुष्य-जीवनके आवाह-प्रवाहके प्रगतिशील रुखको देख अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं। जर्मनीमें बिस्मार्कने भी यही किया, जहां देखो वहां जर्मनी यही उसका स्वप्न रहा था। इसी प्रकार अमेरिकाका भी उदाहरण हमारे सामने हैं, जिसने अपनी सभ्यताके सर्वविश्रुत अंगको विश्वव्यापी बनानेकेलिए आर्थिक-आधारपर विज्ञानको प्रतिष्ठित करते हुए, अन्य जातियोंसे होड़ लगाई है। अतः अमेरिकाके विचारकोंका रुख सर्वथा तत्तद्रूपगुणानुकूल होगया है, तभी उनकी विचारधारा सर्वत्र व्यापार और आर्थिक-विकाशके गीत गाती है।

यही अवस्था प्रत्येक जातिकी है और प्रत्येक राष्ट्र किसी न-किसी ऐसे विचारोंके कारण अपना सिर समय-समयपर जगत्‌में उठाता है। किसीने विज्ञानकी उन्नती की, तो किसीने भौगोलिक-स्थितीका नेतृत्व किया तो किसिने जनसाम्यकी लहर चलाई और कालक्रमसे प्रत्येक जातिके प्रत्येक व्यक्तिने तत्तद्‌गुणोंके रूपके अनुकूल अपना जीवन बना लिया और अपनी संस्कृति बनाली तथा समयके व्यतीत होते ही वही प्रगति तथाकथित राष्ट्के जीवनको सांस्कृतिक उत्तराधिकारिता हो गई, जिसपर कि उसके व्यक्ति गर्व करने लगे।

परन्तु यह कैसे हो पाया और कौन सा ऐसा माध्यम था, जिसके द्वारा मनुष्यके अपनी सांस्कृतिक-परम्पराके गीत गाएँ और अपने नागरिकोंको समय-समयपर सचेत किया और उनको यह बतलाया कि उनका जीवनमें क्या कर्तव्य है? यह प्रश्न अत्यन्त दुरूह नहीं, क्योंकि यह सर्वसिद्ध है कि किसी भी जातिकी भाषा और उस भाषाका साहित्य उस जातिकी सजीवताको सदाके लिए बनाए रखता है और उस जातिकी पीढियोंके अस्त होते रहनेपर भी परम्पराको यथापूर्व ही रखता है। हो सकता है कि प्रत्येक जातिका लक्ष्य भिन्न भिन्न हो, कोई पदार्थवादी हो सकता है तो कोई ईश्वरवादी हो सकता है, तो कोई समाजवादी हो सकता है--- परन्तु इतने विभिद होनेपर भी विचारोंको विस्तृत और विपुलीकृत करनेका माध्यम उस जातिकी भाषा और उस भाषाके साहित्यपर ही निर्भर है। यदि आप किसी जातिका समुचित लोप किया चाहते हों, तो आप उस जातिके साहित्यका सर्वथा लोप कर दीजिए, तो आप अल्पकालमें ही उस जातिको निर्जीव होता पायेंगे--- यह अनुभूत सत्य है। अंगरेजोंने भी यही किया। यद्यपि उनका उद्देश्य, जैसा आजका विचारक कह सकता है, ऐसा न हो कि वे भारतीय-संस्कृतिका लोप किया चाहते हों, परन्तु यह निर्विवाद है कि उनके साहित्यके हमारे देशमें आ जानेसे हमारे देशकी मौलिक सभ्यताका स्वरूप विकृत होता गया और ज्यों-ज्यों कालान्तरमें उनकी भाषा और उनकी संस्कृति जड पकडती गई, त्यों त्यों हमारे विचार भी उनकी भाषा के अनुकूल होने लगे। इसका उदाहरण एक बार किसी महात्माने भी दिया था। उसने कहा था कि भगवान्‌का अंगरेजी रूपान्तर गाड है, अतः जब आप भगवानके स्थानपर गाडके विचारोंसे ओतप्रोत हो तो आप उस गाडके कौनसे गुणों पर विचार करेंगे?

कहनेका तात्पर्य यही है कि अंगरेजी भाषाके आनेपर यद्यपि हमारी सामान्य चेतनाका अभ्युदय हुआ और हम भी आर्थिक-स्तरस्थ जातियोंसे लोहा लेनेकी सोचने लगे तथा उनके जीवनके रहन सहन और आचार-विचारोंको अपने जीवनमें अपनाने लगे, तथापि हमारा निरन्तर सांस्कृतिक-

पतन होता गया, और यह पतन तब तक हुआ, जब तक हमारे देशमें यह लहर नहीं आई कि हम हिन्दू हैं और हमारी भाषा हिन्दी है और हमारा साहित्य सर्वथा हिन्दी साहित्य है। जबतक हमारे विचार इतर भाषाओंमें व्यक्त किए गए, तब तक हमारे भारतीय विचारोंकी मौलिकताका अभ्युदय हो नहीं हुआ। शरीरविज्ञान भी इतर विचारधारासे समनुयुक्त तो अन्यान्य सभी लौकिक-विज्ञानोंकी विचारधारा तत्कथित भाषाओंसे संभजाता थी -- कहां तक कहें हमारे विचार हमारी भावनाओंके परतन्त्र होनेके कारण इतने संकुचित हो गए कि हम न तो अपने विचार विदेशी भाषामें व्यक्त करनेकी क्षमता रख पाये और न स्वतन्त्र-साहित्यका निर्माण ही कर पाये।

परन्तु चिर-चिर जीवन् भारतके लिए यह शाश्वत पीडा नहीं थी। अत: एक नवीन और वेगवती लहर आई और हमने विचार किया कि हमारा साहित्य स्वतन्त्र होना चाहिए, जिसमें कट्टरवादिता भी न हो, रूढिवादिता भी न हो, कूपमण्डूकपरम्परा भी न हो, परन्तु उसमें उन्मुक्त विचारोंकी लीला हो, जिससे उस साहित्यको जनव्यापी बनाया जा सके और उसके विचारोंको स्वतन्त्र बनाया जा सके।

स्वप्न चल रहा है। कह नहीं सकते कि कब हमारे विचार हिन्दीमय होवेंगे और कब हम साहित्यके सच्चे वरदानको प्राप्त कर सकेंगे। अभी तक जो कुछ हो चुका है, वह असन्तोषजनक नहीं तो, पर्याप्त भी नहीं है, क्योंकि हमारे देशके विशाल जीवनको धर्म और व्यवहारके सूत्रमें पिरोनेकेलिए, आर्थिक और राजनीतिके अंगको बलिष्ठ करनेके लिए, समाज और व्यक्तिके निर्माणके लिए यथायोग्य प्रयत्न नहीं हो रहा है। जब तक सामाजिक-आचारके प्रचारकी सम्भावनाको हिन्दीके माध्यमसे भारतव्यापी नहीं बनाया जायेगा, तब तक हम अपने स्वराज्यके सच्चे अर्थको स्पष्ट नहीं कर सकेंगे। राष्ट्रकी राजनीति और समाजकी आर्थिक-व्यवस्था और राजतन्त्रिक-शासनपर उस देशके व्यक्तियोंके आचार-विचारका सबल प्रभाव पडता है और वह जाति ही जीवित नहीं, जिसकी सामाजिक दुर्व्यवस्था अपनी सीमाका अतिक्रमण कर चुकी हो।

इसीलिए जब हम अपनी भाषाके भविष्यात्मक-उत्तरदायित्वकी विवेचना करते हैं, तो हमारा संकेत सर्वथा हिन्दीके माध्यमसे सामाजिक-जागरणकी ओर जाता है। हम यह भी नहीं चाहते कि हिन्दीमें सामाजिक-अभ्युदयके दृष्टिकोणको प्रमुख बनाकर, राष्ट्रोचित अन्य-नीतियोंकी अवहेलना की जाय। हमारा ध्येय तो होना चाहिए कि हम सामाजिक-जागरणकी आधारशिलापर अपनी वर्तमान-सभ्यताकी प्राणप्रतिष्ठा करें, जिसमें अर्वाचीन, प्राचीन, धर्म और व्यवहार, पदार्थविज्ञान और आध्यात्मिक-संस्कृति, मनुष्य और मनुष्यका मधुर समन्वय हो, जिससे हमारी संस्कृति तो सजीव रहेगी, ही, अपितु हमारे देशकी नैतिक-चेतनाका मानवोचित उदय होगा। जहां तक आजके विज्ञानसे हमारा सम्बन्ध है, हम अपना कर्तव्य पूरा करें, और संकुचित विचारोंको त्यागकर क्या विज्ञान और क्या भूगोल और क्या इतिहास और क्या चिकित्साशास्त्र सबकी यथायोग्य सेवा करें—साथ-साथ हिन्दीके कर्तव्यको न भुलावें कि इसने भारतकी धार्मिक और सामूहिक-संस्कृतिका उद्धार करना है, जो कई शताब्दियोंसे निश्चेतन होकर पडी हुई है।

आप पूछेंगे कि सामाजिक-जागरणकी आवश्यकता आर्थिक और वैज्ञानिक-विकाससे क्योंकर श्रेष्ठ मानी गई है, क्या मनुष्य आर्थिक और राजनीतिक-विकासकी प्राप्तिकर आप्तकाम नहीं हो जाता? यह भी ठीक है, परन्तु इतना अवश्य विचार करना चाहिए कि किसी भी देशके लिए यह आवश्यकीय है कि उसके व्यक्ति अपने आचार-विचारमें परिपक्व हों और परिशुद्ध हों— यदि ऐसा नहीं हुआ तो उस देशकी आर्थिक-व्यवस्थाके अच्छे होनेपर भी, उद्योग-धन्धोंके उन्नत होनेपर भी उसकी सभ्यता विनाशके पथपर ही जाती होगी और वह कभी भी अक्षुण्ण नहीं रह सकती।

अतः हमने आज अपनी भाषाके द्वारा जो कार्य प्रारम्भ करना है, वह है हमारे देशकी त्रुटियोंका उद्घाटन और उनका निराकरण। हमारे समाजमें जो सामान्य और असाधारण कुरीतियां फैलती जारहीं हैं, जो कूपमंडूकपरायणता विस्तृत होती जारही है, जो अन्धविश्वासपरायणता व्याप्त होती जारही है, उसका निवारण करना होगा। और साथ साथ हमारे शास्त्रोंने मनुष्यके जो जो कर्तव्य निर्धारित कर दिए हैं और मनुष्य-मनुष्यका जो सम्बन्ध निर्धारित कर दिया है— वह भी आज जनताके आगे समुपस्थित किया

जाना चाहिए, अन्यथा हमारे देशकी अवस्था दिन-प्रतिदिन गिरती ही जारही हैं। पाश्चात्य सभ्यताको ग्रहण किए लगभग १ शताब्दि बीता चाहती है, परन्तु हमने कुछ भी पल्ले लगता हुआ नहीं देखा, उल्टे हमारा दिन-पर दिन पतन होता जारहा है— अतः अपने साहित्यके द्वारा इन विचारोंको व्यक्त करना चाहिए और जनताको सचेत करना चाहिए कि आज उसने अपनेको पश्चिमी सभ्यताके प्रभावसे मुक्त करना है, नहीं तो विनाश सन्निकट है।

यह तो रही बाहरकी बातें- जिनपर हमारे राष्ट्रका निर्माण किया जा सकता है और हमारी भाषा जिसका माध्यम बनेगी। इसके अतिरिक्त दूसरी बात है हमारी सामाजिक व्यवस्था। आज हम देखरहे हैं कि परिवार परिवारमें निरन्तर कलह और क्रान्ति मची हुई है, पुत्र और पिता, भाई भाईके कर्तव्योंका विस्मरण किया जारहा है। जो जितने निकट आत्मीयत्वका अधिकारी है, उतनी ही दूर तक भेदभावकी खाई भी खोद रहा है। जिसका परिणाम है, सामाजिक विकल्प और नैतिक पतन। अतः आवश्यक है कि आजका साहित्यकार परिवारमें जावें और इसके चित्रोंका दिग्दर्शन करावे, जिससे हमारी आनेवाली पीढ़ियां इन कार्यों के भयंकर कुपरिणामोंसे सुविज्ञ रहें– तथा पुत्र होनेके नाते, पति होनेके नाते, भाई होनेके नाते, मित्र होनेके नाते, सम्बन्धी होनेके नाते, प्रवासी होनेके नाते अपने कर्तव्योंको पालन करें। आज हमारे समाजको इसकी महान् आवश्यकता है– आदर्श विचारोंसे समनुयुक्त काव्यों से इस आचारका प्रचार करें, आदर्श भाषाद्वार जनताके विचारोंको तत्तद्भावनामय करदें।

कहा जाता है कि राज्यमें क्रान्तियां होजातीं हैं, रक्त बहने लगता है, राजकुटुम्ब अस्त हो जाते हैं, केवल एक सच्चे साहित्यकारके विचारोंकी शक्तिमत्ताके फलस्वरूप। इसी प्रकार हमारा राष्ट्र उन्नत हो सकता है, सुखी हो सकता है, समृद्ध हो सकता है, विश्वका नेतृत्व कर सकता है, अपने साहित्यकी मनोहरता और आदर्शवादिता और क्रियावादिता द्वारा जिसका प्रभाव मनुष्य पर इस प्रचण्ड गतिसे पड़ता है, वह अपने-आपको भूल जाता है और जो कुछ उसकी भावना कहती है, वही करने लगता है। एतदर्थ साहित्यकी अवहेलना तो कभी करनी ही नहीं चाहिए, और न उस साहित्यके रूपावर्तनकी बात ही सोचनी चाहिए, क्योंकि भाषासे सांकर्य आनेसे उस भाषाके उपयोगियोंके विचारोंमें भी सांकर्य आ ही जाता है। यदि साहित्य स्वतन्त्र हुआ तो हमारी भावनाएँ भी स्वतन्त्रतासे अपना निर्माण कर पायेंगी और हम पराई सभ्यताके वानरीकरणके दोषसे मुक्त हो सकेंगे।

यह है हमारे हिन्दी साहित्यका प्रथम पक्ष, जिस पर मनुष्यके आध्यात्मिक-अंगके निर्माणका उत्तरदायित्व है— और सम्भवतः यदि हमारा प्रयत्न निरन्तर और परिशुद्ध रहा तो यह आशा भी कर सकते हैं कि समस्त भारतकी संस्कृतिको सामूहिकरीत्या सक्रिय किया जा सकेगा। हमारे हिन्दी साहित्यका दूसरा पक्ष है लोकव्यवहारकी समुचित प्रतीति और दैनिक-आचार-विचारका समुचित और यथायोग्य ज्ञान। ऐसे ग्रन्थोंका प्रणयन करना होगा, जो हमें यह निश्चितरूपसे बतलाएं कि हमारा व्यवहार कैसा हो और कौन-से व्यवहारोंका हमने त्याग करना होगा और किसलिए? वे ग्रन्थ सर्वथा मौलिक न भी होंतो कोई हानि नहीं— परन्तु उनका व्यवहारिक होना अनिवार्य है। हमारे शास्त्रोंमें तो लोक व्यवहारकी भरमार है, परन्तु आज हमारा दुर्भाग्य है कि हम उनसे यथेष्ट लाभ नहीं उठा सकते, क्योंकि समय समयपर शास्त्रोंपर अपना आधिपत्य स्थिर करनेवाले धर्माचार्यों ने उनके रूपको इतना विकृत कर दिया है इतना संशयात्मक कर दिया है, इतना अतिशय कर दिया है और कट्टर कर दिया है कि आजके युगमें, जब कि समय सकुचित होता जारहा है और जब कि विश्व भी छोटा होता जारहा है—- हमारे देशवासियोंकेलिए यह सम्भव नहीं कि वे उनपर प्रयोग करें– और जिन्होंने प्रयोग भी किया, वे अपने जीवनकी ही बाजी लगा कर कृतकर्म हुए। इस पर आजके लोगोंमें विवेक बुद्धिका प्राचुर्य नहीं कि वे शास्त्रमनन कर हंसक्षीर न्यायेन सत् और असतका विवेचन कर पावें। अतः आवश्यकता है कि आज ऐसी पुस्तकें होनी चाहिए, जो समयानुकूल हों, जो उपासना, कर्म और बौद्धिकता और अध्यात्म और लोकवादके समन्वयात्मक पक्षको ग्रहण कर जनताको जीवनके सत्यकी ओर जागृत करें।

इसका यह अर्थ नहीं कि लोक व्यवहारको संकुचित दृष्टिसे परखा जावे, अपितु लेखकोंका दृष्टिकोण विशाल होना

चाहिए, विश्वात्मक होना चाहिए, सार्वभौमिक होना चाहिए जीवनयापनकी कौशलता, सांस्कृतिक-चतुराई, विश्वमें रहें और सत्य-आचरणका पालन करें, प्रवासीके प्रति उचित व्यवहार करें-- ऐसे सिद्धान्तोंपर आख्यानोंका प्रणयन कर साहित्यके उत्तरदायित्वके इस पक्ष की पूर्णता करनी होगी।

दूसरे मुझे एक बात पहिले से अखरनी आई है, वह है स्थितप्रज्ञ साहित्यकारों को ही मान्यता देना। मेरा तात्पर्य यह नहीं कि लब्धप्रतिष्ठ साहित्यसेवियोंके मूल्यका अवमूल्यन किया जावे, परन्तु मेरा विचार है कि आज कई ऐसे साहित्यकार भी रहस्यकी कन्दरामें छिपे है, जो कारण वश अथवा परिस्थितियोंके कारण क्षेत्रमें आकर अपनी कुशलताका प्रदर्शन करनेमें अशक्त हैं और जिनकी प्रतिभा समयोनुकूल है, प्रगतिमय है और आदर्शवादी है। चलचित्रोंके अभिनेताओंके समान हमारे साहित्यक्षेत्रमें भी यही रोग व्याप्त है। हमारा ध्येय होना चाहिए कि नित्य नवीन साहित्यकारोंको मुख्यभूमिपर लाकर अपने साहित्यके भण्डारको भरते रहें, उन नवीन-कलाकारोंकी नवीन भावनाओंसे, न कि पुराने विचारोंको तोड-मरोडकर सीमित परिधिमें भूमिस्थ रखे। कलाकारोंकी परीक्षा और उनकी योग्यताका समुचित उपयोग करना आवश्यकीय होगा। कौन जानता है कि कल उन्हींमेंसे कोई तुलसीदास या सूरदास कबीरदास हो सकेगा जो अपने विचारोंकी अभिव्यक्तिके बल जनजनकी भावनाओंमें नवीन क्रान्ति लापावेगा, जिससे साहित्यका कलेवर पुनर्नव होगा। समय समयपर कविसम्मेलनों द्वारा अपनी इष्टपूर्तिका आयोजन करना होगा और नित्यनूतन रत्नोंको खोजना होगा, गुदडीमेंसे लाल निकालने होंगे।

वैसे तो हमारी पत्रकला यथासाध्य परिश्रम कर रही है, तो भी हम यह नहीं कह सकते कि साहित्यकला के चरम विकाशकी दृष्टिसे उन्होंने प्रशंसात्मक कार्य किया है। वैसे तो हिन्दीके पत्रों और पत्रिकाओंकी संख्या है ही कितनी, और जो कुछ अभी सत्ताप्राप्त हैं, वे प्रायः निम्नस्तरपर ही हैं। न तो उन्होंने भाषाकी दृष्टिसे अपने कलेवरको स्वच्छ किया है और न किसी जनप्रिय तथा लोकोपकारी विषय-प्रसंगपर ही प्रकाश डाला है। वही पुराना राग अलापनेसे जनता भी ऊब जाती है। हमारे पत्रों की रूपरेखा अत्यन्त परिष्कृत होनी चाहिए और उसका स्तर इतना महान् होना चाहिए कि उसके अध्ययन करने वाले अपने जीवनपर भी उसके सद्प्रभावको स्पर्श होता हुआ पावें। उनमें सामान्य प्रसंग भी होवें, परन्तु मनुष्य जीवनसे सम्बन्ध रखने वाली कई ऐसी बातें भी होनी चाहिए, जिससे शिक्षित-समाज उनका आदर करे और उनकी उपयोगिता अपने परिवारके लिये अनुभूत करे। समाजमेंसे जिन जिन विनाशकारी प्रथाओंका निर्मूलन करना है, उन पर पर्याप्त प्रकाश डाला जाय और पाठकोंकेलिए सदा यह विचार प्रधान रखा जाय कि उनका दूसरे मनुष्यके प्रति कुछ कर्तव्य है, उनका अपने समाजके प्रति कुछ कर्तव्य है, उनका अपने राष्ट्र के प्रति कुछ कर्तव्य है और उनका विश्वके प्रति भी कुछ कर्तव्य है। जिस प्रकार प्राचीनकालमें विद्यार्थीसे कहा जाता था कि यह विशाल विश्व तुम्हारा परिवार ही है, माता, पिता, गुरु, देवता और अतिथिकी पूजा करो अथवा उनका आदर करो, उसी प्रकार आज सामाजिक-सदाचार को व्यक्तिसे लेकर राष्ट्रतक तथा तत्परतः अन्तरराष्ट्रीय-सदाचार तक जनश्रुत करते हुए हमारा कर्तव्य है कि हम साहित्यके माध्यमसे सर्व प्रथम मनुष्यत्वका ज्ञान करायें, व्यक्तिको व्यक्तित्व की मीमांसा बतावें और स्त्रीको स्त्रीत्वका पाठ पढावें-- साथ-साथ न केवल उनको अपनी संकुचित विचारवादितामें सीमित रखें, किन्तु उनको विशाल विश्वज्जीवनके सुन्दर दृश्य भी दिखलावें, जिससे वे वसुधैव कुटुम्बकम् ही नहीं-- विश्वको सुन्दर और मंगलमय आत्मा का विकाश ही जान पावेंगे।

यदि यह सम्भव हुआ कि हिन्दीके द्वारा सामाजिक सदाचारके लोक व्यवहारी सम्भावना की सम्पूर्ति हो गई, तो हम समझते हैं, कि हिन्दी साहित्यका रूप तो निखरेगा ही, उसकी कीर्ति जनव्यापी तो होगी, उसका डंका भी दिग्य-शस्वी तो होगा ही, साथ साथ यह भी होगा कि हिन्दी केवल राष्ट्रभाषा रहनेके स्थानपर, केवल राष्ट्रसाहित्य की परिधिमें अवलम्बित रहनेके स्थानपर राष्ट्रसंस्कृति बन जायगी, राष्ट्रभारती बन जायगी, जो कालान्तरमें अपने विशाल-यशोमय-अंकमें जीवनोपयोगी समुचित-विज्ञानोंको आश्रय दे सकेगी, समुचित कलाओंको हरा भरा, पनपता हुआ, फलता, फूलता और लहलहाता हुआ देख सकेगी-- क्योंकि उसकी भाषाके विज्ञानपर अभिव्यक्त किए हुए मानवोचित उज्ज्वल सिद्धान्त हमारी जनताके सिद्धकर्म हो

जावेंगे, उसके प्रचारित किए हुए विचार केवलमात्र पुस्तकोंमें ही नहीं रहेंगे और न केवल प्रातःकाल सूर्य उदय होनेपर ही अधीत होंगे, अपितु वे हमारे समाजके आचार विचार, रहन-सहन, खान पानके नैतिक-अंगोंमें अपनेको व्याप्त करते हुए चिरस्थाई भी रह सकेंगे और पुनः एक बार हमारी संस्कृतिका रूप पुनरभ्युदयको प्राप्त होने लगेगा।

हमने केवलमात्र कथा, कहानी, पद्यादि के द्वारा ही सन्तोषका अनुभव करना होगा तो समझ लीजिए कि न तो हमारा साहित्य पनप सकेगा और न समाज ही। यदि साहित्यसे प्रगतिवादको ही स्थान दें, तो हम पथ भूल जायेंगे और यदि उसको आदर्शवादसे समन्वित करें तो हम भाषा और भाषी दोनों का भला कर सकेंगे।

अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं, किन्तु मैं आपको उपरोक्त विचारकी अनिवार्यतासे परिचित कराना चाहता हूं और यह विश्वास करता हूं कि सुविज्ञ पाठक समुचितरूपसे मेरे संकेतको समझ गए होंगे। तथा अन्तमें दो-चार बातें प्रस्तुत लेखके योग फलके निर्णयके लिए प्रस्तुत करता हूं—

किसी भी देशके साहित्यके जागरणसे वहां के समाजका जागरण है, क्योंकि विचारोंका अभ्युदय ही मनुष्यके विकासका द्योतक है तथा साहित्यका निर्माण राष्ट्रके निर्माणका पर्याय ही है। मनुष्य जीवनकी पीठिकापर नये शब्द लिखनेकेलिए यह आवश्यक हो जाता है कि लेखक पहिले लेखभूमि को परिशुद्ध कर लेवे, अतः सत्य वाक्योंमें मनुष्य जीवनके उत्थानके लिये मनुष्यको मनुष्य बनाना होगा और उसे मनुष्यताकी शिक्षा देनी होगी और उसे निर्धारित कर्तव्योंका ज्ञान कराना होगा। इस विशाल कार्यका श्रेय हमारे देशके हिन्दी साहित्यको इसलिए दिया जाता है कि यह अपने शब्द-विज्ञानमें, अभिव्यक्ति-चातुर्यमें, अपवादहीनतामें विश्वकी भाषाओंमें अद्वितीय है। केवल यही नहीं, किन्तु हिन्दी भाषा अपनी त्रुटिकी पूर्ति करनेके संस्कृति के अथाह आधार प्रतिष्ठित है और समय समयपर आवश्यकतानुसार अपनी वांछित-अभिव्यंजनाकी प्राप्ति कर सकती है। सामाजिक-सदाचारके प्रचारसे हिन्दीके प्रति लोगोंका भाव भी अभिवृद्धिको प्राप्त होता जायगा, और अत्यन्त सरल तथा पूर्ण भाषा होनेके नाते किसी भी अहिन्दी राष्ट्रवासीकेलिए हिन्दी वरदान ही होगी। यह कोई विवादमात्र नहीं, मैं हिन्दीके भविष्यात्मक-निर्माणकार्य की ज्वलन्त प्रतिमा देखता आ रहा हूं। हिन्दीके अतीत इसलिए महान् है, कि इसीके द्वारा हमारे सन्तोंने जनजागरण का श्रीगणेश किया था और सांस्कृतिक-अवनतिसे भारतको संभाला था, इसका वर्तमान इसलिए उपादेय है कि यही हमारे राष्ट्रकी भाषा मानी गई है और निश्चयतः इसका भविष्य हम इसलिए उज्ज्वलतर देखते हैं, कि इसीने अपनी गोदमें वर्तमान संस्कृत्योपयोगी साधनों, व्यवहारों और भावोंको स्थान देना होगा, साथसाथ सबसे महान् कार्य करना होगा, गिरते हुए हतभाग्य मनुष्यत्वका उन्नयन। अतः हिन्दी भाषा हमारी उन्नायिका हो, हिन्दी साहित्य हमारा उन्नायक हो और हमारा राष्ट्र नित्य-निरन्तर इसकी ही छत्रच्छायामें विश्राम पावे, और वरदान भी पावे, और हमारा पथ निर्बाध रहे। हिन्दू या हिन्दी, भारत या भारती -सदा विश्वके गुरुपदको शोभित करते रहें।

वेदों का प्रतिपाद्य

(लेखक- श्री० मनोहर विद्यालङ्कार)

वेदोंकी महत्ता.

भारतीय संस्कृतिमें वेदों को बहुत आदर मिला है । वे भारतीय संस्कृतिका आधार समझे जाते हैं। वेदों में ऐसा ज्ञान निहित है, जिसके आधार पर भारतीय किसी भी संस्कृति या सभ्यता से टक्कर लेने मे नहीं हिचकता, बल्कि मुकाबलेमे आकर सदा विजयी होता है ।

वेदोंका यह महत्त्व केवल भारतीयों तक ही सीमित नहीं है । विश्वके प्रायः सभी वेद मनीषी विद्वानो का यह मत है कि विश्व में उपलब्ध पुस्तकों में अथवा ज्ञान की दृष्टि से वेद प्राचीनतम हैं। ज्यों २ वेदों का अध्ययन और मनन किया गया है, वेदों के सम्बन्ध में यह धारणा दृढ होती जा रही है कि वेदोंमें जो ज्ञान या सत्य या सामाजिक व्यवहार वर्णित हैं, वे बुद्धि पूर्वक और युक्ति युक्त हैं, उनको गलत अथवा मूर्खों द्वारा कही हुई गप्पें या अज्ञानी लोगों की प्रकृति के अज्ञान द्वारा की गई स्तुति नहीं माना जा सकता ।

वेदों के महत्व का परिणाम

वेदों के प्रति इतनी उच्च धारणा के कारण वेदों को ईश्वरीय तथा निर्भ्रान्त माना जाने लगा । जब यह स्थापना दृढ मूल हो गई, तब भारत के प्रत्येक वाद तथा दर्शनकार अपने को वेदानुकूल कहने लग गये । भारतीय भूमिमें प्रचलित सब धारणाएं तथा उन पर आधारित धर्म वैदिक धर्म कहाने लगे।

द्वैतवादी विचारकों ने वेदमें द्वैतवाद देखा, और अद्वैत-वादी विद्वानों को वेद अद्वैतपरक दीखने लगे । वेद में किसी को जीवित श्राद्ध मिला और किसीको मृतका । वेदमें किसीने वंश परम्परागत राजाकी प्रथा देखी और किसीको निर्वाचित राजा वेदों के मत से अभीष्ट मालूम हुवा । वेदमें अनेक स्थानों पर सुवर्ण, अश्व, गौ, अन्न, बल और धन की प्रार्थना देख भी कुछ ने वेदोंको केवल पार्थिव और लौकिक व्यवहारवेत्ता अथवा आजकल की तरह मुसीबत में पडे लोगों की प्रार्थना समझा । और कुछ ने उसमें मुक्ति, ईश्वर, और सृष्टि उत्पत्ति आदि गहन विषयों को देखकर उसे आध्यात्मिक एवं दार्शनिक माना ।

वेदों में लडाइयों के भीषण वर्णन देखकर, और शत्रुका समूलोन्मूलन करने के उपदेश और उपाय जानकर कुछ विद्वानों ने इसे पूर्व के लडाकू राजाओं और लोगों का इतिहास मानना उचित समझा । और इसी दृष्टि को लेकर अधिक बुद्धिवादी विद्वानों ने इसे क्षात्रधर्म का क्षमा प्रचारक व 'शठे शाठ्यं' का प्रसारक माना । दूसरी ओर शत्रुको क्षमा करने, सदा शान्ति का जीवन बिताने के उपदेश और इस दुनिया को निःसार समझने के उपदेशों के कारण इसे ब्राह्मण धर्म का प्रवर्तक माना ।

वेद ईश्वरकृत हैं?

इसी प्रकार वेदमें आयुर्वेद, चिकित्सा विज्ञान, व्रीहि, यव, गव्य, घृत, मधु आदि खाद्य; उष्ट्र, हाथी, गौ, घोडा आदि पशु, शुभ वस्त्र, सोना, लोहा आदि खनिज; काम शास्त्र की उपमाएं, स्त्री पुरुष सम्बन्ध, राजाओं, नदियों प्रदेशों के नाम देख कर कुछ लोग इसे ईश्वरीय, और निर्भ्रान्त मानने की अपेक्षा बडे दीर्घकालके विद्वत् विचारोंका संग्रह मानना अधिक संगत समझते हैं ।

चारों वेद समकालीन नहीं

साथ ही उनका कहना यह है कि वेद एक समय में नहीं बने । और इसका सबसे बडा प्रमाण यह है कि सामवेद के १८७५ मन्त्रों में से ९९मन्त्रों को छोड कर सारे मन्त्र ऋग्वेद में आएं । और जो ९९मन्त्र ऋग्वेद में नहीं आएं हैं, संभवतः वे भी ऋग्वेद की आज कल न प्राप्त होनेवाली सांख्यायन संहितामें मिल जाएं, क्योंकि आजकल तो केवल शाकल संहिता प्राप्य है। इसके लिये एक युक्ति भी है, और वह यहकि-- छान्दोग्य उपनिषद् सामवेद की उपनिषद् है। वहां १ अध्याय के प्रथम खण्ड के प्रारम्भ में ही आया है:- "**एषां भूतानां पृथिवी रसः। पृथिव्या आपो रसः अपामोषधयो रसः। ओषधीनां पुरुषो रसः। पुरुषस्य वाग्रसः। वाचः ऋग्रसः। ऋचः साम रसः। साम्ना उद्गीथो रसः।** अर्थात् ओषधियों का सार पुरुष, पुरुषका सार वाणी, वाणी का सार ऋचा और ऋचाका सार साम है। इसका अर्थ यह हुवा कि

वेद पुरुष कृत हैं, और ऋग्वेद तथा सामवेद में भेद नहीं है। और यदि सामवेद ऋग्वेद का सार है अर्थात् ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों का संग्रह है, तो फिर सब वेद सृष्टि के प्रारम्भ में अथवा एक समय की रचना, और ईश्वर निर्मित कैसे हो सकते हैं?

वेदों के प्रति कर्तव्य

अब प्रश्न यह है कि वेदों को ईश्वरकृत, और एक ही काल अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में मानने पर इतना आग्रह क्यो? कि वेदों के सत्य ज्ञान के प्राप्त करने में या उनका अध्ययन करने में समय लगाना तो व्यर्थ समझा जाए या उसकी उपेक्षा की जाए, और इस झगडे में उलझे रहे कि वेद ईश्वरीय हैं या नहीं?

उचित और बुद्धि युक्त मार्ग तो यह है कि यदि हम वेदों को अपनी संस्कृति का आधार मानते हैं तो उसके स्वाध्याय में लग जाएं, और अपनी धारणा बनाएं। और इस बात की परीक्षा करे कि वेदमें कोई असत्य बात तो नहीं। वेदों मे जो ज्ञान है, वह कहीं अन्यत्र भी प्राप्त है या नहीं? वेदों पर केवल अन्ध श्रद्धा न रख भी उसे पढना चाहिये और पढने के बाद जितनी श्रद्धा हो, वह बिना जाने अतिश्रद्धा से अच्छी है।

वेदों का प्रतिपाद्य

हमारी रायमें तो वेद "सत्य विद्याओंकी पुस्तक है"। वास्तव में वह ज्ञान का विश्वकोष है। जिस प्रकार विश्वकोषोंमें भिन्न २ बल्कि बिलकुल विरोधी विचार धाराएं और स्थापनाएं वर्णित होती हैं। विरोधी शब्दों के अर्थ दिये होते है। उसी प्रकार वेदों में विरोधी वाद, विरोधी दर्शन, विरोधी विचार विरोधी जीवन के प्रकार और जीवन को सुखी बनाने के विरोधी उपाय, सब वर्णित हैं। और उनके वर्णित होने से वेदों के प्रामाणिक होने में, उसके महत्व में कुछ कमी नहीं आती बल्कि उसकी अधिक पूर्णता ही सिद्ध होती है।

वेदोंमें मनुष्य स्वभाव का पूर्णरूप से वर्णन है, कुछ ऐसे स्वभाव भी वर्णित हैं, जो आदर्श और अनुकरणीय न होकर हेय हैं। किन्तु उससे वेदों की अपूर्णता नहीं, पूर्णता सिद्ध होती है। जिस प्रकार मनो विज्ञान के ग्रन्थ में पागलों और कामियों के स्वभावों का वर्णन होने से उसे कोई अपूर्ण या मूर्खों की पुस्तक नहीं बल्कि इन वर्णनों के अभाव में वह अपूर्ण समझी जाती है, उसी प्रकार वेदों में सब प्रकार के जीवन, उनके रहन सहन के तरीके उनकी सामाजिक व्यवस्थाएं वर्णित हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वेद को ये सब जीवन आदर्श रूप में ग्राह्य हैं।

वेदों में ज्ञानकी समाप्ति

वेदों में वर्णित सब विद्याएं सत्य हैं; इस स्थापना मे कोई असंगति नहीं है, और कमसे कम अभी तक किसी विद्वान् ने इस स्थापनाका युक्ति पूर्वक, खण्डन नहीं किया है। किन्तु यह स्थापना कि "वेदों के बाहर सत्य विद्याएं नहीं हैं, या जो वेदों में नहीं हैं, उसे हम सत्य या ज्ञान मान नहीं सकते" मूर्खता पूर्ण हैं, और महर्षि दयानन्द के मन्तव्य के अनुकूल भी नहीं है। इस स्थापना का अर्थ है कि हम वर्तमान युगके ज्ञान विज्ञान को प्राप्त करने और उससे लाभ उठाने से अपने को वञ्चित रखना चाहते हैं। महर्षि दयानन्द की दृष्टि में तो "वेदानुकूल तथा वेद विरुद्ध" सब ज्ञान सदा ग्राह्य हैं।

महर्षि दयानन्द ने वेदों को ईश्वरकृत सिद्ध करने के लिये निम्न युक्तियां दी है –

(१) जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल वर्णन हो वह ईश्वरकृत,

(२) जिसमें सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण, आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त।

(३) जिस पुस्तक में भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो वह ईश्वरोक्त।

इन युक्तियों के आधार पर यह मानने में कोई आपत्ति नहीं मालूम होती कि आज कल भी इस प्रकार का ज्ञान या सत्यज्ञान मनुष्य के हृदय में प्रकट हो सकता है जो ईश्वरीय हो क्यों कि सृष्टि के प्रारम्भ में तो परमेश्वर ने पवित्रात्माओं के हृदय में वेदों का ज्ञान दिया था उसको वाणीके रूपमें तो उन देहधारी ऋषियों ने ही प्रकट किया था।

इसलिये अच्छा यह है कि वेदानुयायी और वेदमनीषी विद्वान् अपने दृष्टिकोण को उदार तथा विशाल बनाकर व्यर्थ के झगडों में न पडकर वेदों के अध्ययन अध्यापन में रत रहें; और वेद रूपी समुद्रसे उत्तम उत्तम रत्न निकाल कर समाज का लाभ करते रहें।

हमारे सहयोगी

१- नया जीवन

सम्पादक— श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
प्रकाशक— विकास लिमिटेड सहारनपुर।
वार्षिक मूल्य ५).

सन १९५२ ई. से यह मासिक रूपमें हमारे सामने आया है। 'नया जीवन' की प्रत्येक पङ्क्ति सचमुच नया जीवन देनेवाली है। स्वस्थ एवं प्रगतिशील विचारोंका यह भाण्डार सा है। थोडेमें बहुत कुछ और बहुत सुन्दरतासे प्रस्तुत कर देना इसकी सबसे मुख्य विशेषता है। सभी अवस्था एवं सभी प्रकारकी रुचिवालोंके लिये यह समानरूपसे स्वादिष्ट, हितावह तथा ग्राह्य है।

'नया जीवन' सच्चे अर्थोंमें राष्ट्रको नया जीवन देनेके लिये यत्नवान् है। कौन न चाहेगा कि उसकी दिनदूनी और रात चौगुनी उन्नति न हो। हम ऐसे आदर्श मासिक-पत्रका शत शत अभिनन्दन करते हैं।

२- अदिति

सम्पादक — डॉ० इन्द्रसेन।
श्री अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी

नामके अनुरूप सचमुच ही यह अपनी किरणोंसे राष्ट्र एवं विश्वके अन्त करणोंमें ज्ञानकी किरणें फैला रहा है। १५ अगस्तका उसका विशेषाङ्क अपनी अनेक विशेषताओंके साथ प्रकाशित हुआ है। योगिराज अरविन्दके जीवनपर अनेक दृष्टिकोणोंसे इसमें प्रकाश डाला गया है। बहुत ही परिश्रम एवं सुन्दरताके साथ इसका सम्पादन हुआ है। ईश्वरसे प्रार्थना है कि संसारके अज्ञान एवं निराशाको दूर करनेके लिये यत्नशील इस अदितिको सदैव अधिकाधिक प्रकाशमान बनावे।

तू मेरा कह दे !

लेखक- श्रीनारायण प्रसाद "बिन्दु"

इस जग में जो कुछ मेरा
सर्वस्व तुझे वह अर्पित है !
नित प्रति कहता हूं 'मैं तेरा'
यह जीवन चरण निवेदित है
पर हाय ! देख किस भांति अहंकी
मिट्टी से तन निर्मित है !
जीवन कानन इतना मेरा
वैभवशाली - विस्तृत है
पर पूजा हित एक पुष्प भी
किसी डाल में विकसित है ?
जो चुनता तुझे उसे तू चुनता
विद्युत अक्षर वर्णित है
एक बार 'तू मेरा' कह दे
"बिन्दु" न और अभीप्सित है !

सम्मिलित प्रभु यश गान

लेखक- श्री. लालचन्द्र

मिल जुलके प्रभु तव यश गावें
तव चरणों में आवें ॥ ध्रुव ॥
हम सब जन एकहि मन होवें,
तव बलिहारी जावें।
तव जग में प्रभु बिन जग-सेवा,
छिन भर चैन न पावें।
जन-सेवा में तव पूजा लख,
तव चरणन चित लावें।
तुझ बिन और न गति मति कोई,
तुझ से आशिष पावें।
सब जन मिलकर एक हृदय हो,
तेरा ही यश गावें।
भक्ति प्रेम से भरदो हृदय,
नित ही यह वर चाहें॥

क्या असुरसम्राट् बलि भी भगवद्भक्त था ?

'कल्याण मासिक' के सौर माघ सं. २००८ के 'भक्त-चरितांक में' असुर सम्राट् बलीका चरित्र दिया है। यह परम भक्त था ऐसा भी वहां लिखा है। इसका चरित्र कल्याणके इस अंकमें इस तरह दिया है –

बलिका चरित्र

१ प्रल्हाद के पुत्र विरोचनकी पत्नी सुरोचनासे उदार-मना बलिका जन्म हुआ। विरोचन के पश्चात् ये ही दैत्येश्वर हुए।

२ बलिने दैत्यसेना लेकर देवताओंपर चढाई की और स्वर्गपर पूरा अधिकार जमाया। देवता पराजित हुए और असुरोंका राज्य स्वर्गमें हुआ।

३ कुछ समयके पश्चात् देवोंने अपनी तैयारी की और असुरोंका पराभव करके स्वर्गपर अपना स्वराज्य पुनः स्थापित किया। इस युद्धमें कई असुर मारे गये, कई घायल हुए। स्वयं बली भी घायल होकर भागा। अपने देशमें जाकर फिरसे युद्धकी तैयारी करने लगा। इस समय भृगुओंने इसे अच्छी सहायता की।

४ शुक्राचार्यने इस बलीको सहायता की और उत्तम रथ तथा अन्यान्य युद्ध साहित्य अग्निसे उसे दिलवाये। इन युद्ध साधनोंसे बलीका सामर्थ्य बहुत बढ गया। बलीने फिर देवराज्यपर आक्रमण किया और देवोंका पूर्ण पराभव किया। सब देव स्वर्गसे भागे और छिपकर गुप्तरीतिसे रहने लगे। बली स्वर्गका सम्राट् हुआ।

५ देवमाता अदितिको बडा दुःख हुआ। वह कहने लगी कि 'हाय, मेरे पुत्र देव पहाडोंकी गुहाओंमें छिपकर रहते हैं, वे अपने स्थानसे भ्रष्ट हो गये हैं, उनके स्थानमें रहकर असुर बडी मौज कर रहे हैं। इन असुरोंका पराभव हो और सब देव अपने अपने स्थानपर पुनः आजांय, ऐसा करना चाहिये। अपने पतिदेवसे अदितिने ऐसा प्रतापी पुत्र मेरे गर्भसे उत्पन्न हो, ऐसी प्रार्थना की।

६ योग्य समयमें अदिति महर्षि कश्यपसे गर्भवती हुई और वामन नामक पुत्र हुआ। उसका उपनयन हुआ।

७ बलि यज्ञ कर रहा था। उस यज्ञशालामें बटु वामन पहुंचा। बलिने उसका सत्कार किया और जो चाहिये सो मांगो, ऐसा कहा।

८ वामनने तीन पांव भूमि मांगी। प्रथम बलीको यह थोडीसी भूमि मांग रहा है, ऐसा मालूम हुआ। पश्चात् वह भूमिका दान देने लगा।

९ इतनेमें बलीके सिरपर वामनने पांव रखा और उसको पादतल के नीचे किया, तब बलीके सैनिक वामन पर दौडे, इधर विष्णुके सैनिक भी उठे और दोनोंका युद्ध हुआ। अन्तमें बलिका पराभव हुआ। उसको वरुण पाशोंसे बांधा गया और पातालमें भेज दिया गया।

१० बलिका पराभव होकर स्वर्गपर देवोंका राज्य हुआ और सबको परम आनंद हुआ।

यह बलिकी कथा का सार है। देवोंपर दोवार आक्रमण करनेवालेको, तथा दोवार देवों के साम्राज्यपर अपना अधिकार जमाकर देवोंको कष्ट देनेवालेको यहाँ ईश्वरभक्त कहा है। इसलिये इस कथा को इतिहासकी सत्यदृष्टीसे देखना चाहिये।

प्राचीन समयका भूगोल.

बलीकी यह कथा तथा अन्यान्य कथायें ठीक तरह समझनेके लिये उस समयका भूगोल समझनेकी आवश्यकता है। इसलिये हम यहां पर उस समयका भूगोल संक्षेपसे देते हैं।

स्वर्गलोक– त्रिविष्टप्– आजका तिब्बत है। त्रिविष्टप् काही अपभ्रंश तिब्बत् हुआ है। यह नहीं समझना चाहिये कि मरनेके पश्चात् ही लोग इस लोकमें जाते थे। अर्जुन जीते जी इन्द्रके पास तथा शंकरके पास अस्त्र लानेके लिये गया था, पाण्डव जीतेजी वृद्ध अवस्थामें वहीं गये थे। स्वर्गारोहणपर्व पढो तो वहां तिब्बतमें जानेका मार्ग भी बताया है। इसके पढनेसे तथा उस मार्गका नकशा देखनेसे स्वर्गके विषयका सब संदेह दूर हो जायगा। तात्पर्य आजका तिब्बत त्रिविष्टप् है। वहां इन्द्र (देवजातीका अध्यक्ष) रहता था। इसका अधिकार स्वर्ग (तिब्बत)

मानव लोक (आर्यावर्त) और पाताल (कोंकण) इन तीन स्थानोंपर चलता था। इसीका नाम त्रिलोकी है।

इस स्वर्गमें देवजातीका राज्य था अर्थात् यहां राज्य करनेवाली जातीका नाम 'देव' था। भारतवासियोंका नाम 'आर्य' था और पाताल वासियोंका नाम 'सर्प' था। सर्पका अर्थ 'सांप' नहीं, अपितु यह सर्प जातीके लोगों का नाम था। समुद्रसमतल भूप्रदेशका नाम पाताल माना गया है। यहां की कन्याएं सुंदर होती थीं और आर्य उनसे विवाह भी करते थे। आर्य सांपोंके (जन्तुओंके) साथ विवाह करते थे, ऐसा मानना मूर्खता है। वास्तवमें सर्पजातीकी स्त्रीसे विवाह होता था। ऐसे अनेक विवाह हुए हैं। और सर्पजातीके कई नाम इन कोंकणवासियोंमें आज भी हैं। कोंकण वह देश है जो बंबईसे लेकर कारवार तक फैला है। अस्तु; स्वर्गलोक, मनुष्यलोक और पाताललोक वास्तवमें ये उपरि निर्दिष्ट लोक हैं। उस समयके लोग इन देशोंमें इच्छानुसार आजके समान जाते आते थे। भारतके लोग वृद्धावस्थामें तपस्या करनेके लिये इसी स्वर्गमें जाते थे और उनकी मृत्यु वहां होती थी। इसलिये 'स्वर्गवास, कैलासवास, वैकुण्ठवास' ये पद मृत्यु वाचक आज माने जाते हैं। वृद्धावस्थामें वहां जाकर मरना यह श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये उस समय स्वाभाविक था।

भूतलोक- आजकलका 'भूतान' ही 'भूतस्थान' है। मरनेके पश्चात् भूत होनेवालोंका भूतलोक मानना, और महादेव के गणोंको मरने के बाद पिशाच मानना भूल है। भूत नामक मानवजाती थी और उस जाती का अधिपति कैलासमें रहता था। ये लोग भी भारतमें आते थे और भारतके लोग कैलासमें जाकर रहते थे। यह जैसा आज होता है वैसा ही पूर्व समयमें होता था।

वैकुण्ठ लोक – यह उपेन्द्रका स्थान है। आज भी विष्णुपद का अस्तित्व बताते ही हैं। '**स्वर्गद्वार, स्वर्गकपाट, विष्णुपद**' ये आज भी कोई देख सकते हैं। यहां उपेन्द्र रहता था। '**इन्द्र-उपेन्द्र**' ये नाम '**अध्यक्ष-उपाध्यक्ष**' के अर्थके वाचक हैं। इन्द्र त्रिविष्टप का शासन व्यवहार देखता था और उपेन्द्र भारतके शासन व्यवहारको देखता था। इसलिये उसकी दूसरी उपाधि '**नारायण**' थी। नारायण का अर्थ (नरेषु अयनं यस्य) मानवों- आर्य जातीके लोगोंमें जिसका जाना आना है। यहांका शासनाधिकारी नारायण था। गंगानदीको त्रिपथगा (तीनोंलोकोंमें जानेवाली नदी) कहते हैं, इसका यही कारण है कि वह तिब्बत, आर्यावर्त तथा समुद्रसमतल प्रदेशमें बहती है।

गंधर्व- अप्सराओंका देश मध्य हिमालय है।

अहिगण देश- अफगाणिस्तान है, अफगान सर्पगण हैं। सर्पगण-सप्पगण-हप्पगण-अफगण ऐसा उनका नाम बनता है। यही **पिशाच देश** है। पिशाच का अर्थ 'पिशिताश' है। रुधिरपीनेवाले, मांसभक्षी। पिशाच मरणोत्तर बननेवाले नहीं।

असीरिया देश '**असुरदेश**' है। यहीके सब असुर हैं। दान्यूब नदीके पासकी भूमिमें '**दानव**' रहते थे। असुर और दानव ये दो देश विभिन्न हैं। बाक्ट्रीया देशसे बक लोग भारतमें आये थे, जिस बक को भीमसेनने मारा था। '**वृत्र**' देश दक्षिण रशियामें है। '**रक्षस्**' रशिया देशके निवासी थे।

ये बहुतसे देश भारतके पश्चिममें हैं। वहांसे ये लोग भारतमें आते थे, यहां रहते थे और यहांके आर्योंको सताते थे और इनको दूर करने और भारतका दुःख दूर करनेके लिये उपेन्द्र विष्णुको प्रयत्न करना पडता था।

इस तरह असुरों और राक्षसों आदिके अनेक अतिप्राचीन जातियोंके स्थान अब स्पष्टतः निश्चित हुए हैं। वे सब महाभारत और पुराणोंके प्रमाणोंसे बताये जा सकते हैं। बलीकी इस कथाका विचार करनेके लिये, जितने उद्धरण एवं प्रमाण ऊपर दिये हैं उतने पर्याप्त हैं। इन्हीं आधारोंपर अब बलीकी कथाका विचार करते हैं।

इतिहास का प्रश्न इतिहासकी दृष्टिसे ही देखना चाहिये। तिब्बतमें देवजातीका राज्य था, भारतमें आर्यजातीका राज्य था और कोंकणके सातों तालोंमें अर्थात् सप्तपातालोंमें सर्पजातीका राज्य था। ये तीनों मानवों की जातियां थीं। इन तीन जातियोंका आपसमें बहुत अंशमें मेल था।

पश्चिम दिशामें पिशाच, असुर, दैत्य, राक्षस आदि जातियां रहती थीं। ये वारंवार युद्ध करती, लूटमार करती और 'देव-आर्य-सर्प जातियोंको सताती थीं। ये तीनों देश सम्राट् इन्द्रके आश्रयमें थे और उपेन्द्र के अधीन इनकी रक्षाका कार्य था। इसी उपेन्द्रका नामान्तर 'नारायण, विष्णु'

था जो अनवरत यत्नसे इस त्रिलोकी की रक्षा करनेमें दक्ष रहते थे ।

असुरोंकी लीला

पश्चिम दिशासे दैत्य, दानव, असुर, राक्षस वारंवार इस त्रिलोकी पर आक्रमण करते, इसमें लूटमार करते और अनेक प्रकारसे इसको सताते थे ।

प्रल्हाद

प्रल्हादके पिता हिरण्यकशिपुने यहां आकर उपद्रव मचाया था। नारसिंहने उसका नाश किया और प्रल्हाद देवोंके अनुकूल होने के कारण नारसिंहने उसका संरक्षण किया। प्रल्हादने अपने साम्राज्यपर आनेपर भी किसी तरह इस त्रिलोकीको उपद्रव नहीं दिया। इसलिये प्रल्हादको हम अच्छा भक्त था, ऐसा मान सकते हैं। किन्तु असुरजातीके राजाओंमें यह अपवाद समझिये ।

विरोचन

प्रल्हाद का पुत्र विरोचन था। ' कल्याण ' के लेखकने इस भक्तचरितांक में विरोचन असुरको भक्त माना है। और इसने कुछ उपद्रव नहीं दिया ऐसा भी लिखा है। पर इस लेखकने ऐसा भी लिखा है कि इन्द्रने गुप्तरूपसे ब्राह्मण वेशमें उनके पास जाकर उसका जीवन मांगा और विरोचनने अपनी तलवारसे अपने ही हाथसे अपना सिर काटकर उस ब्राह्मणवेषधारी इन्द्रको दिया। इन्द्र इसके सिरको लेकर अपने राज्यमें आकर आनन्दसे रहने लगे ।

क्या विरोचन ऐसा मूर्ख था ?

' कल्याण ' के लेखक इस कथाके लिये धन्यवादके योग्य हैं। विरोचन सम्राट् था। अपने राज्यपर शासन कर रहा था। कोई ब्राह्मण आजाय, विना कारण सिर मांगे और विचार न करते हुए वह अपना सिर देदे ! यह क्या चतुरता है, या भक्ति है, या इसको पागलपन कह सकते हैं !!! किस दृष्टीसे यह अनुकरणके योग्य माना जा सकता है ? क्या कल्याणके लेखक चाहते हैं कि आजके भारतके स्वराज्यमें ऐसी घटना बन जाय ?

अकबर बादशाह भक्त था। वह देहलीपर शासन कर रहा था। कोई हिंदु संन्यासीके रूपमें आजाय और उनका सिर मांगे तो वह विना सोचे अपने हाथसे अपना सिर काटकर उसको देवे ? हमें पूर्ण विश्वास है कि कोई ऐसा कदापि नहीं करेगा और किसी भी शासकको कदापि ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि शासकपर कुछ न कुछ दायित्व रहताही है; पर कल्याणके लेखकने ऐसा लिखा है !!!

भलेही ' कल्याण ' के लेखक कल्याणमें जो चाहे वह लिखें और मर्जी हो वैसा प्रकाशित करें। न भारतके शासक वैसा करेंगे और न अन्य कोई भी शासक कभी ऐसा कर सकेंगे। स्वयं ' कल्याण ' के संपादक के पास कोई आकर ऐसी मांग करेगा, तो वे स्वयं अपना सिर काटकर कभी उसको नहीं देंगे। वे सोचेंगे, पूछेंगे, उसके आगे पीछे की बातें जानेंगे और संदेह आया तो उसको पुलिस थानेमें रखवा भी देंगे। पर उन्होंने अपने भक्त चरितांकमें आदर्श भक्त के चरित्रमें ऐसा लिख दिया है ! इसका कारण इतनाही है कि उनका पूर्ण विश्वास ऐसा है कि, भक्तोंके चरित्र न पढनेके लिये होते हैं और न अनुकरणके लिये होते हैं। वे आदर्शस्वरूप तो किसीके लिये होतेही नहीं। वे केवल छापनेके लिये ही होते हैं। कोई ऐसा करेगा नहीं, स्वयंभी वैसा करना नहीं है, किसीने भी अनुकरण करना नहीं है। फिर जो कुछ मनमें आये वह छाप सकते हैं। केवल भारतही ऐसा देश है जहाँ यह सब चल सकता है।

छपाईके साधनोंका इतना दुरुपयोग दूसरे देशमें होना असंभव है। भक्तके नामपर यह सब भारतमें ही हो सकता है !!

विरोचनका दोष।

वास्तवमें विरोचन दोषी था। महाभारत सभापर्वमें लिखा है—

आसीत् त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामय ।
विरोचनो मयस्तारो वराहः श्वेत एव च ॥ ७ ॥
एते चान्ये च बहवो दैत्यसंघाः सहस्रशः ।
देवतानामभिमुखाः तस्थुः दैतेयदानवाः ॥ १० ॥
म. भा. सभा. ५१

' देवोंका असुरोंके साथ त्रैलोक्यविख्यात युद्ध हुआ इस युद्धमें यही विरोचन, जो भक्त प्रल्हादका पुत्र था, और जिसका नाम इसी भक्तांकमें अलंकृत हुआ है, वह

*

इन्द्रादि देवोंके विरुद्ध हुए युद्धमें अपनी सब सेनाके साथ देवोंका नाश करनेके लिये लड रहा था !! और देवोंका इसने पराभव भी किया था। इस युद्धमें इन्द्र, वरुण तथा विष्णु घायल हुए थे। जो पाठक देखना चाहें वे सभापर्वके ५१ वें अध्यायमें इस संग्रामका वर्णन देखें। प्रल्हाद भले ही भक्त हुआ हो। पर उस असुर-दैत्य वंशमें उत्पन्न हुई विरोचन नामक यह संतान कभी विश्वासपात्र नहीं हो सकती। भारतीयोंनें परकीयोंपर विश्वास रखकर कितने दुःख सहे हैं, वे इतिहासमें लिखे हैं। आज भी **हम हमारा नाश करनेवालोंपर कितना विश्वास रख रहे हैं यह सब जानते हैं।** यह विरोचन भक्त प्रल्हादका पुत्र था, प्रजापतिके गुरुकुलमें ३२ वर्ष वेदशास्त्र पढता भी रहा, पर वह अपनी जातीकी कुटिलनीतिमें भी अत्यंत कुशल रहा था।

विरोचनके षड्यन्त्र

यही विरोचन इन्द्रका नाश करनेके लिये अनेक युक्तियां गुप्तरीतिसे करता रहता था; ऐसा पद्मपुराण अ. १३ में लिखा है।

ऐसे ' **उपद्रवकारी विरोचन** ' का वध गुप्तरीतिसे इन्द्रने किया अथवा करवाया, तो बुरा क्या हुआ ? कल्याणके लेखक लिखते हैं कि विरोचनने भक्तिके कारण अपना सिर काटकर ब्राह्मणरूपी इन्द्रको दिया। इस विषयमें हम नम्रतापूर्वक इस लेखकको कहते हैं कि एक ही कथा सब पुराणोंमें कहां कैसी है यह देखे विना वे अपना लेखन न करें। महाभारत और पद्मपुराणकी साक्षीसे हमने बताया कि यह विरोचन देवोंका नाश करनेका (युक्ति प्रयुक्तिसे पर गुप्तरीतिसे) प्रयत्न करता था। बाहरसे ' देवोंका मित्र मैं हूं ' ऐसा बताना और हरएक प्रकारसे देवोंका नाश करनेके युद्धमें हर प्रकारकी सहायता देना और देवराज इन्द्रकाही विनाश करनेका षड्यंत्र रचना इन सब विरोधी कार्योंको करने वाला ' **विरोचन** ' था। वह कल्याणके लेखककी संमतिसे भक्त शिरोमणी बना है ! ! '

विरोचन इतना दुष्ट था, मित्रता बताकर शत्रुता करता था, इसलिये इन्द्र कपटवेशसे उसके पास गया और युक्तिसे उसका सिर काटकर अथवा कटवाकर लाया तो उसमें इन्द्रके धैर्यकी प्रशंसा करनी चाहिये।

छत्रपति शिवाजी अपने थोडेसे अनुयायियोंके साथ शाहिस्ताखानकी छावनीमें जाकर उसका हाथ काटकर आये थे, वैसा ही यह इन्द्रका कार्य बडीही चतुरता तथा शूरवीरताका है। शत्रु जहां हो वहां उसका नाश करना ही चाहिये। ऐसे कपटी शत्रुका नाम भक्तोंमें हिंदु ही रख सकते हैं ! ! !

गणेश पुराणमें भी इसी विरोचनकी कथा आयी है। विरोचनने सूर्योपासना करके उससे एक मुकुट प्राप्त किया। मुकुट देते समय सूर्यने उसे कहा कि यदि यह मुकुट दूसरेके हाथमें चला जाय तो तुम्हारा नाश होगा। इस मुकुटके कारण इसकी शक्ति बढ गयी और इसके कारण यह देवोंको कष्ट देने लगा। अन्तमें विष्णुने स्त्रीरूप धारण करके इसका नाश किया।

> स सूर्यवरदानेन चक्रे त्रिभुवनं वशे।
> च्युतस्थानाः ततो देवा अच्युतं शरणं ययुः ॥३२॥
> ततस्तेन धृतं रूपं सर्वयोषिद्वरं स्त्रियः।
> तेन तं रमयामास बहुकालं विरोचनम् ॥ ३४ ॥
> (गणेश २।२९)

' विरोचनने सूर्यके वरदानसे त्रिभुवनको अपने वशमें किया। सब देवोंको स्थानभ्रष्ट कर दिया। पश्चात् विष्णुने स्त्रीरूप धारण करके उसका नाश किया। ' वरदानसे शक्ति प्राप्त करके देवराज्यपर आक्रमण करना, देवोंको स्थानसे पदच्युत करना, उनके स्थानपर असुरोंको रखना, क्या यह सब भगवद्भक्तके चरित्र हैं ?

हम विनीतभावसे कल्याणके लेखकको कहते हैं कि जो कथा लिखनी है, वह कथा सब पुराणों और उपपुराणोंमें जहां जहां आयी हो, वहां की सब कथाएं प्रथम वह देखें, और उन सबका विचार करके जो लिखना हो वह लिखें। पुराणकारोंको पता नहीं था कि पुराणोंकी सब कथाओंको न जाननेवाले भी लेखक भारतवर्षमें निर्माण होंगे। वे ऐसा ही समझते थे कि लेखक सब कथाप्रसंगोंको जानेंगे और जो लिखना है वह लिखेंगे। गणेश पुराणमें विरोचनको " **कुबुद्धिमान्** " (ग० पु २।२९।३५) तथा '**कामासक्तः**' (ग० पु० २।२९।३६) कहा है। ये विशेषण उसकी असुरताको बतानेवाले हैं।

विरोचनका घमण्ड और उसका अज्ञान

इन्द्र और विरोचन प्रजापतिके गुरुकुलमें पढनेके लिये गये। दोनों वहां ३२ वर्ष रहे। इन्द्र वारंवार प्रजापति आचार्यजीसे अपनी शंकाओंको पूछता था और ज्ञान प्राप्त करता था। विरोचन थोडेसे प्रारंभिक ज्ञानके प्राप्त होनेपर संतुष्ट हुआ, उतनाही सब कुछ है ऐसा मानकर उतनाही अधूरा ज्ञान अपने असुरोंमें फैलाने लगा था।

स ह शान्तहृदय एव विरोचनो असुरान् जगाम तेभ्यो हैतां उपनिषदं प्रोवाच . . तस्मादप्य· द्येहाददानं अश्रद्धानं अयजमानं आहुः आसुरो बतेति असुराणां ह्येषोपनिषत् प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेन अलंकारेणेति संस्कुर्वन्ति एतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते॥

(छां० उ० ८।७।२)

' संपूर्ण विद्या प्राप्त न करता हुआ ही विरोचन असुरोंके पास चला गया और उनको वह अधूरा ही ज्ञान कहने लगा। ... इसलिये आज भी जो दान नहीं करते, श्रद्धा नहीं रखते और यज्ञ नहीं करते उनको असुर कहते हैं। प्रेतके मृत शरीरको वस्त्रालंकारसे सजाना यह असुरोंका मन्तव्य है। ऐसा करनेसे वे परलोकमें विजय प्राप्त करेंगे ऐसा मानते हैं।'

यह छांदोग्य उपनिषद्का कथन है। अर्थात् उपनिषद् विद्या जाननेवाली मंडलीमें विरोचनको कुछ भी संमानका स्थान नहीं था। ऐसे ज्ञानहीन देवशत्रुको परम भक्त माना जा सकता है, ऐसा इस कल्याणके लेखकका आग्रह है!

सम्राट् बलिकी भक्ति

'कल्याण' के इस 'भक्तचरितांक' में बलीका भी चरित्र दिया है। इसलिये इसके चरित्रका विचार अब हम करते हैं।

पूर्वोक्त विरोचनका पुत्र बलि था। इसने एकवार देव राज्यपर चढाई की थी। देवों और असुरोंका बडा घोर युद्ध हुआ। देववीरोंकी तैयारी अच्छी थी। इस कारण देवोंका विजय हुआ और बलीका पराजय हुआ। दैत्योंका अधिक संहार हुआ। यह देखकर नारदमुनिके मनमें दया उत्पन्न हुई और नारदमुनि कहने लगे-

ब्रह्मणा प्रेषितो देवान् देवर्षिर्नारदो नृप।
वारयामास विबुधान् दृष्ट्वा दानवसंक्षयम्॥४३॥
श्रिया समेधिताः सर्व उपारमत विग्रहात्॥४४॥

श्री. भागवत. ८।११

'दानवोंका बहुत संहार हुआ यह देखकर ब्रह्मदेवको दया आगयी। उन्होंने नारदको देवोंके पास भेजा और युद्ध बंद करो ऐसी सूचना की। नारदने भी आकर कहा कि देवो! अब तुम युद्ध बंद करो।' नारदका भाषण सुनकर देवोंने युद्ध बंद किया।

यहां पाठक देख सकते हैं कि देवजातीके वीर अपने शत्रुपर भी दया करनेके लिये तत्पर रहते थे। नारदादि ऋषिमुनि असुरराक्षसोंका भी संहार अत्यधिक न हो, ऐसा ही चाहते थे। 'शत्रुपर भी प्रेम करना' यह देवों और ऋषिमुनियोंकी नीति थी। इस युद्धमें बलीकी अवस्था ऐसी बनी थी-

येऽवशिष्टा रणे तस्मिन् नारदानुमतेन ते।
बलिं विपन्नमादाय अस्तं गिरिमुपागमन्॥४६॥
तत्रावशिष्टावयवान् विद्यमानशिरोधरान्।
उशना जीवयामास संजीविन्या स्वविद्यया॥४७॥
बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यपन्नेन्द्रियस्मृतिः।
पराजितोऽपि नाखिद्यत् लोकतत्त्वविचक्षणः॥४८॥

श्री. भागवत ११

'नारद मुनिकी संमतिसे जो असुर बचे थे वे बलिको लेकर पश्चिम पर्वतके पास चले गये। वहां संजीवनी विद्यासे शुक्राचार्यने उन असुरोंको जीवित किया। बली भी होशपर आया, सब बातें उसके स्मरणमें आने लगीं और वह व्यवहार जाननेवाला होनेके कारण पराजित होनेपर भी खिन्न नहीं हुआ।'

इस वचनमें बलीकी मनोवृत्ति अच्छी तरह विदित होती है और वह इस प्रकार है-

बलिका अत्याचार

१ 'बलीने देवराष्ट्रपर विना कारण चढाई की थी।' देवजातीका कोई अपराध नहीं था। इसलिये वह बलीकी चढाई किसी तरह समर्थनीय नहीं थी।

२ देवोंने असुरोंका पूरा पराभव किया था, करीब करीब

सब मारे गये, कई घायल हुए, स्वयं बली बेहोश हो चुका था।

३ नारद आदि ऋषिमुनियोंको असुरोंकी दया आगयी और 'दयाभावसे उन्होंने देवोंसे कहा कि युद्ध बंद करो।' तदनुसार देवोंने युद्ध बंद किया।

४ दयाभावसे नारदने बलि आदि असुरोंको पश्चिम अस्त पर्वतके पास लेजाकर भृगुओंके आश्रममें रखा। वहां उनका औषध उपचार किया और नवजीवन दिया।

५ इस आश्रममें बली पुन सामर्थ्यवान् हुआ। उनके अनुयायी राक्षस फिर बलवान बने।

६ इतनी दया बतानेपर भी बलीपर उसका अच्छा परिणाम नहीं हुआ। उसको अपने पूर्व समयके विना कारण युद्ध करनेके अपराधके विषयमें बिलकुल खेद नहीं हुआ। इतनाही नहीं परंतु वह अपने देशमें जाकर पुन नवीन सेना जमा करके फिरसे देवोंको पराजित करनेकी तैयारी करने लगा!

शत्रुपर दया

यह है असुरोंकी मनोवृत्ति और यह है ऋषिमुनि और देवोंकी मनोवृत्ति। असुर दया करनेवाले पर भी क्रूरतासे पुन आक्रमण करते हैं और देव तथा ऋषि आक्रमण करनेवालोंपर भी पुनः पुनः दया दिखाते हैं।

इसका परिणाम क्या हुआ? क्या बलिका मन बदल गया? क्या बलिके मनमें निर्दोष देवोंपर फिरसे आक्रमण न करनेका सुविचार आगया? कुछ भी नहीं। वह असुर तो असुर ही रहा और पुनः आक्रमण करनेकी तैयारी करने लगा--

> पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो
> हीन्द्रेण राजन् भृगुभिश्च जीवितः।
>
> श्री. भा. ८।१५।३

'बली पराजित हुआ। प्राण भी चले जानेके समान मूर्छित हो गया, इन्द्रने दयासे अर्धमृत अवस्थामें उसे छोड दिया, भृगुओंके आश्रममें किये गये औषधोपचारसे जीवित हुआ।' ऐसी अवस्था होनेपर भी यह बली फिरसे अपनी तैयारी करता है और देवराष्ट्रपर फिर धावा करता है--

बलिकी दूसरी चढाई

> अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः।
> सुरुग्धरोऽथ संनद्धो धन्वी खड्गी धृतेषुधिः ॥८॥
> तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः।
> पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥ १० ॥
> वृतो विकर्षन् महतीं आसुरीं ध्वजिनीं विभुः।
> ययाविन्द्रपुरीं स्वृद्धां कंपयन्निव रोदसी ॥ ११ ॥
> देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचनः पुरीम्।
> देवधानीं अधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम् ॥३३॥
>
> श्री भागवत १५

'महारथी बली उत्तम रथपर बैठता है, सब शस्त्रास्त्र साथ लेता है, असुरोंकी टोलियोंको जमा करता है, अपनी बडी सेना सुसज्य करता है और देववीरोंपर चढाई करता है। देववीर सावध नहीं थे, और बलीकी चढाई चारों ओर से एकदम हो गई, इसलिये विरोचनपुत्र बली देवराष्ट्रकी राजधानीपर एकदम कब्जा कर सका और वहां अधिकार जमानेके पश्चात् उसका अधिकार तीनों लोकोंपर हासका।

त्रिविष्टप, आर्यावर्त व पातालपर उसने अधिकार जमाया। यहां विचार करनेकी बात यह है कि--

शत्रुपर दया करनेका परिणाम

१ पूर्व युद्धमें इन्द्रने, नारदने तथा ब्रह्माने जो बलीपर दया बतायी थी, वह अयोग्य पुरुष पर दया थी। क्योंकि वह बली फिर वही अत्याचार वैसा ही करने लगा है। बली अथवा असुरोंपर दया बताना यह राष्ट्रीय महापाप है। यह ब्रह्मा, नारद और इन्द्रके भी ध्यानमें नहीं आया!

२ इन्द्र पूर्वयुद्धमें बलीका वध कर ही रहा था, करीब करीब वह आधा मर चुका था। यदि नारदमुनि इन्द्रको निवृत्त न करते, तो बलि और उसका सब सैन्य मारा जा चुका था और जो रहा था वह मरही जाता। नारदादिकोंने उसे बचाया। पर इस कृपाकी ओर बलीने बिलकुल ध्यान नहीं दिया और देवराष्ट्र पर पुनः कब्जा कर लिया।

३ देवराष्ट्र पर तथा त्रिलोकी पर कब्जा करके वह शान्त नहीं रहा, परंतु सब देवोंको मारपीट कर भगाया, बिचारे इन्द्रादिदेव देवलोकमें रह नहीं सके। पहाडोंकी गुफाओंमें अथवा जंगलोंमें जाकर छिपकर अपनी जान बचाने लगे!!

सुर और असुरोंकी नीति

राक्षसोंकी कर्तूतें सदा ऐसीही होती हैं। प्रान्तपर कब्जा करनेपर वहांसे असावध देवोंकी कतल करना, उनको भगाना उनके घरों स्थानों और स्त्रियों पर अपना अधिकार करना, तथा देव फिर अपने स्थानपर न आ जांय ऐसा करना, यह तो उनकी नीति ही रहती है। और देवोंकी नीति यह रहती है कि उन असुरोंपर वारंवार दया करना, उनके अपराधोंकी क्षमा करना, उनको कष्ट न हो इस विषयमें विशेष दक्षता दिखाना, ये हैं देवोंके व्यवहार। इससे देवोंको जो कष्ट होते थे, वे पुराणोंमें वर्णित हुए हैं।

अस्तु इस तरह देव पराजित हुए और बलीका राज्य त्रिभुवन पर हो गया। बलीकी राजनीति कितनी कठोर थी, वह भी देखने योग्य है। देवस्त्रियां रोती रहीं और रोनेके समय वे स्त्रियां इस तरह बोलती—

बलिका अत्याचार
स्त्रियोंका रोना

तस्मादीश भजन्त्या मे श्रेयश्चिन्तय सुव्रत।
हृतश्रियो हृतस्थानान् सपत्नैः पाहि नः प्रभो॥१५॥
परैः विवासिता साहं मग्ना व्यसनसागरे।
ऐश्वर्यं श्रीः यशः स्थानं हृतानि प्रबलैः मम॥१६॥
यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन् ममात्मजाः।
तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम॥१७॥
(श्री भाग० ८।१६)

बलिके बुरे राज्यशासनके कारण देवलोक तथा आर्यावर्तकी अवस्था कैसी बन गयी थी, यह इन स्त्रियोंके रोनेमें दीख रही है, देखिये, जरा विचार पूर्वक देखिये—

१ हमारे देशके तरुण (हृतश्रियः) संपत्तिहीन, ऐश्वर्यविहीन बन रहे हैं। उनकी सब संपत्ति बलिके अनुयायियोंने हरण की है, इस कारण हमारे देशवासी निर्धन बन चुके हैं।

२ (हृतस्थानाः) हमारे देशके तरुणोंको राज्यशासनमें कोई स्थान नहीं मिल रहा, सब ओहदोंके स्थानोंपर असुरोंकी भरती हो रही है, सेना भी असुरोंकी है, किसी शासनाधिकार पर देशवासी रखे नहीं जाते हैं। इसलिये हमारे देशके तरुणोंको राज्यशासनका अनुभव नहीं मिल रहा है। हमारे देशवासियोंको न घर हैं न किसी सार्वजनिक स्थानमें वे विशेष अधिकार पा रहे हैं। जिधर देखो उधर असुर ही असुर सुखोपभोग ले रहे हैं। हमारे घरोंपर, जायदादोंपर असुरोंने अधिकार जमाया है और हमारे देशवासी स्थानभ्रष्ट हो गये हैं।

३ (परैः विवासिता) शत्रुओंने हमें ही देशसे बाहर निकाल दिया है, हमें घरबार नहीं रहा। अपने ही देशमें हम परकीयसे बन गये हैं।

४ (व्यसनसागरे मग्नाः) दुःख सागरमें हम डूब रहे हैं। हम विपत्ति भोग रहे हैं और बलिके अनुचर राक्षस ऐश्वर्य भोग रहे हैं।

५ (ऐश्वर्यं श्रीः यशः स्थानं हृतानि) ऐश्वर्य, शोभा, यश और अधिकारके स्थान बलिके अनुयायियोंने हरण किये हैं। इनपर हमारा अधिकार था, पर अब इनपर बलीका अधिकार हुआ है। सब ऐश्वर्य उनके अधीन, सब शोभा उनके लिये, सब यश उनको मिल रहा है और सब ओहदे उनको मिल रहे हैं। ये सब हमारे थे, पर अब इनपर कबजा बलिका अर्थात् असुरोंका हुआ है। अपने देशमें हमारा मान कुछ भी रहा नहीं है।

६ (मम आत्मजा यथा तानि पुनः प्रपद्येरन् तथा विधेहि) हमारे तरुण जिस रीतिसे अपना ऐश्वर्य पुनः प्राप्त करेंगे वैसा प्रयत्न करो।

७ (हे प्रभो ! नः पाहि) हे प्रभो ! हमारा संरक्षण करो। ऐसा करो कि जिससे हमें अपना वैभव पुनः प्राप्त हो जाय।

स्त्रियोंके इस रोनेमें बलिकी कठोर राजनीतिके कारण देवराष्ट्रकी और आर्यराष्ट्र की कैसी विपन्न अवस्था बन गयी थी, उसका उत्तम वर्णन है। अंग्रेजोंके राज्यशासनमें लदनके स्टेटसेक्रेटरीके हाथमें भारतके संपूर्ण राज्यशासनके सब सूत्र रहते थे, यहां गवर्नर, गवर्नर जनरल, कमिशनर, कलेक्टर, सेक्रेटरी, सबके सब अंग्रेज रहते थे, सेना भी अंग्रेजी थी, भारतीय लोगोंको बडे ओहदेकी आशा नहीं थी, सब ऐश्वर्य, सब शोभा, सब यश अंग्रेजोंका था, युद्ध करनेके लिये भारतीय जवानोंका उपयोग होने पर यश अंग्रेजोंको मिले, राज्यशासन का कोई अनुभव भारतीयोंको मिलता नहीं था,

बलि और अंग्रेज

ठीक अंग्रेजोंके समान शासन-व्यवस्था बलीके शासनमें थी। देवराष्ट्र और आर्यराज्यके तरुण बेकार हुए थे, उनको कोई आशाका स्थान नहीं था। यह देखकर माताएं रोती थीं। बिचारी माताएं और क्या कर सकती हैं ? क्या यह भगवद्भक्त बली है जो दूसरोंके राज्योंमें ऐसा हाहाकार मचा सकता है ! बली भी पश्चिमीदेशका था, और अंग्रेज भी पश्चिमके ही थे। पाठकोंसे पूछता हूं कि वे बलीके साम्राज्यमें अंग्रेजी राज्यकी अपेक्षा कम विपन्न अवस्था थी ऐसा सिद्ध करनेका यत्न करें। वे जितना विचार करेंगे उतना बलीके तथा अंग्रेजोंके राज्यमें साम्य ही उनकी नजरमें आयेगा। ऊपरके स्त्रियोंके रोनेके शब्दोंमें एक एक शब्द अत्यंत महत्त्वका है। उसका विचार पाठकोंको करना चाहिये। यह एक एक शब्द बलीकी कुटिल साम्राज्यनीतिका वर्णन करता है। पाठकोंको इन पदोंका पुनः पुनः विचार करना चाहिये।

बलि और मोंगल

मोंगल साम्राज्यमें कभी न कभी कोई भारतीय हिंदु दिवान पदपर जाता भी था, पर वहां भी प्रायः सर्वत्र विदेशी मोगलों काही वर्चस्व था। देहलीमें क्या और विजापुर आदिमें क्या भारतीय मुसलमानोंको भी सन्मानका स्थान बहुत करके मिलता नहीं था, इसलिये ' मुल्की ' और ' गैरमुल्की ' ऐसे मुसलमानोंमें विभाग हुए थे और इस कारण गैरमुल्कियों के पास बडे ओहदेके स्थान रहते थे और मुल्कियोंको छोटे स्थान मिलते थे। इस कारण मुल्की मुसलमान कभी कभी हिंदुओंके अनुकूल भी होते थे। अर्थात् यही नीति कुछ अंशमें बलीके शासनमें शुरू थी। इसी कारण स्त्रियां यह दुःख दुःसह होनेके कारण रोती रहती थीं। इससे सिद्ध होता है कि बलीकी राजनीति अंग्रेजोंसे तथा मोंगलोंसे अच्छी नहीं थी।

पूर्वोक्त स्त्रियोंकी प्रार्थना सुननेपर ईश्वरने क्या कहा सोभी अब देखिये—

ईश्वर कहते हैं।

यत्सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥१२॥
तान् विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान्।
प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥१३॥
इन्द्रज्येष्ठैः स्वतनयैः हतानां युधि विद्विषाम्।
स्त्रियो रुदन्तीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः॥१४॥
आत्मजान् सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशःश्रियः।
नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥ १५ ॥
(श्री भाग. ८।१७)

' हे देवि ! देवमाता ! तू चाहती है कि घमंडी उद्दंड असुरोंका युद्धमें पराजय करके तुम्हारे पुत्र पुनः अपना राज्य, ऐश्वर्य, शोभा और यश प्राप्त करें, अपने अपने ओहदों के स्थानोंपर पुनः आकर विराजें, पुनः अपना राज्य करें, युद्धमें शत्रुओंका नाश हो, और उन शत्रुओंकी स्त्रियां दुःखसे रोती पीटती रहें, तुम्हारे पुत्र समृद्ध हों, यशस्वी हों और वे स्वर्गलोकमें पुनः आकर आनन्दसे खेलते रहे। ऐसा दृश्य तुम देखना चाहते हो। '

स्त्रियोंकी यह इच्छा थी। यह भगवानने भी जान ली थी। और इस इच्छाको तृप्त करनेके लिये भगवान् तत्परता से कार्यमें लगे थे। ऐसा ही बने, ऐसा भगवान् भी चाहते थे। ऐसा करनेके लिये ही वामन का जन्म हुआ था। भगवानका अवतार इसकी सिद्धता करनेके लिये ही हुआ था।

बलिका वैदिकधर्म स्वीकरण

बलीकी नीति अद्भुत थी। उसने यह देखा था कि भारतीय लोग धर्मके लिये जीवित रहते हैं और मरनेके लिये भी तैयार होते हैं। इसलिये धर्मका विरोध करके यहां राज्य करना असंभव है। यह देखकर उन्होंने वैदिक धर्म को अंगीकार किया और वह यज्ञ भी करने लगा! यज्ञमें ब्राह्मणोंको अच्छी दक्षिणा मिलने लगी ! इससे ब्राह्मण संतुष्ट हुए ! बलि ब्राह्मणोंके, यज्ञोंके, वैदिक देवताओंके भक्तके रूपमें प्रसिद्ध हुआ!!! उस समय ब्राह्मण ही राष्ट्रीय हलचल करनेवाले थे, वे बलिके यज्ञयाग करनेसे संतुष्ट हुए। इस लिये विरोधी हलचल करनेवाला कोई नहीं रहा। ब्राह्मण जाती आनन्दमें रही, उन्होंने यह समझा कि बली तो वैदिकधर्मी बना है। यहां शत्रुता रही नहीं। वैदिक धर्म उसने स्वीकारा, यज्ञ करना प्रारंभ किया, ब्राह्मणोंको प्रणाम करना और उनपर भक्ति प्रकट करके उनको योग्य दक्षिणा देना यह उन्होंने शुरू किया। इससे साधारण जनता मानने लगी कि यह राज्य तो वैदिक धर्मी राजाका ही है। इस में शत्रुता करनेके लिये कोई स्थान ही कहां है ?

बलीके वैदिक धर्मको स्वीकार कर लेनेसे और यज्ञ करनेसे उस समयके बडी आयुवाले ब्राह्मण बलीकी ओर आकर्षित हो चुके थे। उन्होंने बलीका द्वेष करना छोड दिया था। वे बलीको अपना भक्त मानने लगे थे। पर यह उनकी बडी भारी भूल थी।

बलीका कपट।

बली इधर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर संतुष्ट तो रखता था, पर अपनी राजनीतिमें थोडी भी शिथिलता आने नहीं देता था। सभी ओहदोंपर असुर थे, राज्ययंत्र असुरोंको समृद्ध करनेके लिये ही बर्ता जाता था। जैसा देव स्त्रियोंके रोनेमें और भगवान् के आश्वासनमें थोडी देर पूर्व हमने बताया है। वैसीही राज्यशासनकी नीति उनकी रही थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह बलीकी एक प्रकार की चालबाजी ही थी।

यदि बली सचमुच वैदिकधर्म स्वीकार कर भारतीय बन जाता, तो यहांके तरुणोंको राज्यशासनमें नियुक्त करता। पर वैसा परिवर्तन राज्यशासनमें करनेकी उनकी इच्छा नहीं थी। वह तो संपूर्णतया आसुरप्रधान ही राज्यशासन रखना चाहता था। वैसा ही उन्होंने रखा था। ब्राह्मणोंका सत्कार और यज्ञ करना यह सब इसलिये था कि, यहांके लोग शान्त रहें और अपने विरुद्ध राज्यक्रान्ति न हो। अर्थात् बलीका यह सारा कपट और ढोंग था। इसीलिये ब्राह्मण संतुष्ट हुए थे परंतु स्त्रियां रोती पीटती थीं। परमेश्वरकी प्रार्थना स्त्रियां करती थीं और चाहती थीं कि अपने पुत्र युद्ध करें, असुरोंका पराभव करें और पुनः अपना राज्य हो, देववीर यशस्वी हों और राक्षस पराभूत होकर यहां से भाग जांय। यह स्त्रियोंकी आकांक्षा थी।

पाठक यहां ठीक तरह स्त्रियोंके विलापका रहस्य समझें, स्त्रियोंकी आन्तरिक इच्छा क्या थी और वह क्यों थी यह जानें और पुरुष वर्ग बली की कपटनीतिके कारण किस तरह फंस गया था, यह सब ठीक तरह जानें। तब बली की कथाका रहस्य ध्यानमें आ सकेगा।

ऊपर स्त्रियोंका जो कथन कहा है वह स्पष्ट है। भगवान का उत्तर भी स्पष्ट है। ये दोनों विचारपूर्वक देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि, बलिका यज्ञ करना और ब्राह्मणोंकी भक्ति करना अपने साम्राज्य को सुरक्षित करनेके लिये ही था। यदि उसकी राज्यशासन की नीति बदल जाती तो वामनके लिये कोई कार्यही नहीं रहता।

इस बात को स्पष्ट करनेके लिये यहां दो एक उदाहरण लेना आवश्यक है। अंग्रेजी राज्यमें लार्ड रिपन जनताका हित करनेवाला करके प्रसिद्ध है और लार्ड कर्झन भारत राष्ट्रका घात करनेवाला करके प्रसिद्ध है। इसी तरह मोगल राजाओंमें अकबर जनताका हित करनेवाला और औरंगजेब जनताका मारक करके प्रसिद्ध है। पाठक यहां देखेंगे कि लार्डरिपन का और अकबर का सौम्य शासन अपना साम्राज्य स्थायी करनेके लिये ही था। पर इनकी सौम्यता के कारण क्रान्तिकारियोंका कार्य कठिन हो गया था। वही लार्डकर्झन और औरंगजेब के क्रूर शासन के कारण क्रान्तिकारियोंका कार्य अच्छी तरह से चल सका।

इसी तरह हिरण्यकशिपुका वध करना सरल बात थी, पर बली की इस कपट नीतिके कारण और ब्राह्मणोंको वश करनेके कारण बलिके विरुद्ध बलिके नाश करनेका उपाय करना अत्यंत ही बिकट कार्य था। वामनने यही किया, और इसी कारण वामन की प्रशंसा करना अत्यत योग्य है। कौरव रावण आदि का वध करना आसान था, पर बलिका वध करना उक्त कारणसे अशक्य था। क्योंकि अपने ही लोग बालिको अनुकूल हो गये थे और वामन का भी विरोध करने की अवस्थामें वे हो सकते थे। अतः इस दृष्टीसे वामन का कार्य बडा ही दुःसाध्य था। छत्रपति शिवाजीका विरोध करनेवाले जैसे मोगलोंके आश्रय से रहनेवाले महाराष्ट्रीय ही और हिंदू ही हुए थे, वैसे ही बलीसे दक्षिणा पानेवाले और बलीको इन्द्र पद देनेके लिये यज्ञ करानेवाले भृगु और शुक्राचार्य ही थे। राजकीय अभ्युत्थान की दृष्टीसे विचार किया जाय, तो दिल्लीपतिके अभ्युदयार्थ यत्न करनेवाले राजपूत वीर मिर्झा राजा जयसिंग और रामसिंग, जिन्होंने स्वराज्य स्थापन करनेवाले छत्रपति शिवाजीको पकड कर आगरेमें औरंगजेब के हवाले किया था। इनका राष्ट्रद्रोह और देवराष्ट्र तथा आर्यराष्ट्रके तरुणोंका सर्वस्व नाश करनेवाले बलीको स्वर्गराज्यके सिंहासन पर बिठलानेके कार्य में सहायता

करनेवाले भृगुओंके कार्यमें कोई अन्तर नहीं है ।

बलीके साम्राज्यशाहीका परिणाम आर्यराष्ट्रोंके सर्वस्व नाशमें किस तरह होता था, और उस नाशको देखकर हताश होकर स्त्रियां किस तरह रोती पीटती थी, और भगवानने भी उनको आशीर्वचन देनेके समय उनका रोना यथार्थ है ऐसा कहा ही था । ऐसा आर्यराष्ट्र का विध्वंसक, विदेशी शासक जो कि कपट पटुतासे वैदिकधर्म स्वीकार कर यज्ञ करता था, ब्राह्मणोंकी वंदना करता, पर इधर असुरोंकाही शासन सुदृढ करता जाता था। यह बात उस समय के भोले भृगुवंशी ब्राह्मणोंने नहीं जानी, परंतु तरुण क्रान्तिकारी वामनने जानली थी और अपने साथ बलीका नाश करने के कार्यमें सहायता देनेवाले अनेक तरुणोंको भी इस तरुण वामनने तैयार किया था । यह शिक्षा दीक्षा उस समयके तरुणोंको घरमें स्त्रियोंसे और गुरुकुलके आचार्योंसे मिली थी । जिससे तरुण वीर बलिके साम्राज्य को नष्ट करनेके लिये संगठित हुए और वामनके अग्रेसरत्वमें यह राज्य-क्रान्ति हुई ।

क्रान्तिवीर वामन

वामनका जन्म हुआ। वामन के समय अन्य सैकडों तरुण जन्मे होंगे । वामन बलिके साम्राज्य को तोडनेके लिये ही जन्मा था । कश्यप ऋषिके आश्रममें ये तरुण शिक्षित और दीक्षित हुए थे । कश्यप ऋषिका आश्रम ऐसे आन्दो-लनोंके लिये पहिलेसे प्रसिद्ध है । सिंदुरासुर के साम्राज्यको तोडनेकी क्रांति भी यहीं हुई थी । बलीके साम्राज्य को तोडनेकी क्रांति भी यहीं हुई । एक ही वामन था ऐसा मानना भूल है । वामन के साथ वामन के विचारके सैकडों हजारों तरुण थे, जिन्होंने वामनको ऐन समयमें सहायता की थी ।

अन्तमें बलीके ९९ यज्ञ हो चुके थे । १०० वा यज्ञ हो जाता तो बली इन्द्रपद पर बैठ जाता, फिर उसका साम्राज्य तोडना और बलिको हटाना अत्यंत अशक्य कार्य था । इसलिये वामनने अपने अनुयायी गुप्तरीतिसे शस्त्रास्त्र छिपा-कर यज्ञशालामें पहिलेसे भेज दिये थे । वे बलिकी यज्ञ-शाला में जहां बैठना चाहिये वहां बैठे और अपने नेता वामन की प्रतीक्षा करते रहे ।

समय पर वामन यज्ञशालामें प्रविष्ट हुआ । भृगु आदि दक्षिणार्थी ब्राह्मण बलीको स्थायी सम्राट् बनाने की योजना सफल होनेके कारण हमें बडी दक्षिणा मिलेगी इस तरह की देशद्रोही क्षुद्र आशामें रहे थे । वामनके अनुयायी दक्ष और सावध थे और वामन पर हमला हुआ तो किसने क्या करना चाहिये, वह समयपर करनेके लिये निष्ठासे सावधान थे । ऐसे सुयोग्य समय पर वामन यज्ञशाला में प्रविष्ट हुआ । बलीको अथवा भृगु आदिकोंको तरुणोंकी राज्य-क्रान्ति का कोई पता नहीं था । इस कारण वे पूर्ण रीतिसे असावध थे । वामन तथा उसके तरुण अनुयायी सावध थे । किस तरह क्या करना चाहिये यह वे अच्छी तरह जानते थे । यह समय ऐसा भयानक था कि इस समय यदि देव-वीर की थोडीसी भी गलती हो जाती, तो सब क्रान्ति जो वामन करना चाहता था वह फस जाती । यह दायित्व वामन तथा उसके साथियोंपर था ।

वामन पर राक्षसोंका आक्रमण

वामन यज्ञशालामें प्रविष्ट हुआ । बलि उसको देखकर प्रभावित हुआ । वामनने अपने आश्रमके लिये भूमि मांगी वह देनेके लिये बली तैयार हुआ। उसके पुरोहित शुक्रने इसका विरोध किया । पर बलीने नहीं माना और बली भूमि देने लगा । इतनेमें झटपट वामनने बलीको नीचे गिरा दिया और उसके सिर पर पांव देकर खडा रहा । समय तो वहां था ही नहीं । सब बातें क्षणमें ही बननेवाली थीं । बली सम्राट् था, उसके सेनापति वहां थे । उन्होंने देखा कि इस तरुणने बलीको नीचे दबाया है । यह देखते ही वे शस्त्र लेकर वामनपर दौडे और वामनके अनुयायी भी इधरसे दौडे । बडा घोर संग्राम हुआ, इसका वर्णन देखो–

अनेन याचमानेन शत्रुणा बटुरूपिणा ।
सर्वस्वं नो हृतं भर्तुः न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि ॥११॥
तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः ।
इत्यायुधानि जगृहुःबलेरनुचराऽसुराः ॥ १२ ॥
ते सर्वे वामन हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः ।
प्राद्रवन् जातमन्यवः ॥ १४ ॥ श्री. भा० ८।२१

बलिके रक्षक पुकार कर कहने लगे कि– "अरे क्या देखते हो, यह वामन बडा भारी शत्रु है, यह ब्रह्मचारीके वेषसे आया है, पर यह हमारे स्वामी बलीका शत्रु है। देखते देखते यज्ञ करनेवाले हमारे स्वामीका इसने सर्वस्व हरण किया है । इसलिये इस वामनका वध करना ही हमारा धर्म है, चलो ! इस दुष्ट शत्रुरूपी बटुको मारो,

काटो, इसका वध करो, दौडो। हमारे बलिका संरक्षण करना हमारा धर्म है। ऐसा बोलकर उस बलिके सैनिकों ने अपने अपने शस्त्र अस्त्र लिये और वे सब वामन पर दौडे। सबका उद्देश एक ही था और वह यह कि वामनका वध किया जाय।''

यज्ञशालामें बडा कोलाहल मचा। चारों ओर दोनों दलोंके वीरोंमें दौडधूप शुरू हुई। वामन जानता था कि ऐसा होनेवाला ही है। वह दक्ष था। असावध न था। उसके साथी भी तैयार थे–

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान् नृप।
प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः॥ १५॥
नन्द: सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्रिराट्॥१६॥
जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः।
सर्वे नागायुतप्राणाः चमूं ते जघ्नुरासुरीम्॥१७॥

श्री. भाग ८।२१

'असुरोंके सेनापति और सैनिक वामन पर दौड रहे हैं ऐसा देखकर वामन के अनुयायी हंसकर आगे बढे। और अपने आयुध ऊपर करके उनको प्रतिबंध करने लगे। नन्दादि अनेक देवोंके तरुणवीर वहा थे और एक एकका बल सहस्रों हाथियोंके समान था। वे आगे होकर असुरोंके सैनिकोंका वध करने लगे राक्षस वहां मरने लगे, हजारों मरे, कई घायल हुए, असुरोंका पराभव और देवोंका जय होने लगा।'

हाहाकार हुआ

हाहाकारो महानासीद्रोदस्योः सर्वतो दिशम्।
गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना॥ २७॥

श्री. भाग. ८।२१

'जिस समय वामनने असुर सम्राट् बलिको पकडा उस समय सब दिशाओंमें और आकाशपातालमें बडा हाहाकार मचा।' उसी समय–

बलीको कैद किया

अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट्प्रभुचिकीर्षितम्॥
बबन्ध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ॥२६॥
तं बद्धं वारुणैःपाशैः भगवानाह वामनः॥२८॥
विश त्वं निरयं तस्माद् गुरुणा चानुमोदितः॥३२॥
तद्विपलीकफलं भुंक्ष्व निरयं कतिचित्समाः॥३४॥

श्री. भाग. ८।२१

'तार्क्ष्यपुत्रने वामनका मनोगत जान लिया, इशारेसे उसने जान लिया और वरुणपाशोंसे बलिको बांध लिया। इस समय याजक लोग सोमाभिषव कर रहे थे, वह यज्ञ वैसा ही अधूरा रहा। इस समय वामन विजयी हुआ, असुर पराभूत हुए, बली कैद हुआ। वामनने बलिको आज्ञा की कि वह सुतल नामक पाताल स्थानमें कई वर्ष तक रहे।' उस तरह बलिको वहां कई वर्ष कैदमें रखा।

यह स्थान रत्नागिरीके पास है, जहां बलिको वामनने रखा था। (ब्रह्मदेशके) थिबा राजाको भी यहीं अंग्रेजोंने रखा था।

बलीको पातालमें क्यों रखा?

वामनने बलिका पराभव करके उसको अपने असुर देशमें जानेकी आज्ञा नहीं दी और उसको अपने अधिकारके प्रदेशमें नजरबंद कैदी करके क्यों रखा, यह बडा महत्वका प्रश्न है। इसमें वामनकी प्रशंसनीय बुद्धिमत्ता दीखती है।

हमने ऊपर बताया है कि बलिने पहिले भी एकवार देवराष्ट्र पर आक्रमण किया था और देवराष्ट्रके सैनिकोंने उसका पूर्ण पराभव भी किया था। यहां तक कि वह अधमरा बेहोश हो गया था, उसके सैनिक भी घायल हुए थे। इतनेमें नारद मुनि आये, ब्रह्माजीने शिफारस की और इन्द्रने इसे घायल सैनिकोंके साथ अपने देशमें जानेकी आज्ञा दी। मार्गमें भृगुओंके आश्रममें यह रहा, स्वास्थ्य प्राप्त करनेके पश्चात् यह अपने देशमें गया, वहां इसने फिरसे सैन्य और शस्त्रास्त्र जमा किये, फिरसे देवराष्ट्रपर आक्रमण किया, देववीर दक्ष नहीं थे, इसलिये परास्त हुए। इस समय देवोंको जो कष्ट हुए वे बलिके इस इतिहासमें लिखे गये हैं। यदि बलिको अपने देशमें भेजा, तो पुनः वह आक्रमण करेगा, यह अनुभव वामनको पूर्व इतिहाससे मालूम था। वैसा अनुभव पुनः लेनेकी वामनकी इच्छा नहीं थी और वह अत्यंत योग्य थी।

पृथ्वीराज और महंमद घोरी

हम इतिहासमें देखते हैं कि पृथ्वीराजने महंमद घोरीको १६ वार परास्त करके भेजा और उसी महंमद घोरीने १७ वीं वार पृथ्वीराजके नाकमें दम कर दिया। पृथ्वीराज हिंदु था। १६ वारके अनुभव से उसने इतिहासका पाठ नहीं सीखा। इसलिये उसे शत्रुके अधीन होना पडा। हिंदु कब इतिहासके पाठ सीखेंगे, इसका पता परमेश्वरको होगा। पर वामनने एक वारके इतिहाससे ही आवश्यक पाठ सीख

लिया और बलिको अपने ही राज्यमें नजरबंद करके रखा। वहाँ भेजकर उसके पाश तोड़ दिये और वहांसे अन्य देशमें जानेके लिये बंदी की और वहीं उसे स्थानबद्ध करके रखा। वामनने जो किया वह यदि पृथ्वीराजको मालूम होता, तो वह बिचारा न फंसता।

पृथ्वीराज ही क्यों ? पेशवाओंने निजामका पराभव बीसियों वार किया, पर उसको वैसा ही रखा। अब भी वही बात वैसी ही बनी है। ऐसे समय क्या करना चाहिये इसका पाठ वामनने दिया है। इस कारण बलि अन्ततक यहीं नजरबंद तथा स्थानबद्ध रहा। यह जो वामनने किया वही योग्य किया था।

समुद्र समतल प्रदेश पाताल है। मुंबईसे कारवार तकके प्रदेशको ' १४ ताल कोंकण ' कहते हैं। यह इस प्रदेशका नाम आज भी प्रचलित है। अतल, वितल, सुतल, ऐसे सप्त पाताल ऊपर और सप्त पाताल नीचे ऐसे ये १४ ताल हैं। इससे सुतल नामक भाग रत्नागिरीके पास आता है।

विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥

श्री. भाग. ८।२३।३

' बलि आनन्दसे अपने असुर अनुयायियोंके साथ सुतल में जाकर रहा । ' इसकी स्थानबद्धताका यह वृत्तांत है।

यदि इतना आक्रमणकारी बली भक्तगाथामें आसकता है, तब तो मोहंमद भक्त श्री जीना साहेब, लियाखत अलीखां साहेब तथा स्त्रियोंका अपहरण करनेवाले उनके अनुयायी सब लोग भक्त शिरोमणी होनेमें कोई संदेह ही नहीं है। ऊपर दिये वर्णनके अनुसार ' हृतश्री, हृतस्थान, हृतैश्वर्य ' यह सब पाकिस्तानमें भी वैसा ही हुआ जैसा बलिके राज्यमें हुआ था। स्त्रियां भी वैसी ही रोती पीटती रहीं। अन्तर केवल इतना ही है कि बलिके राज्यमें स्त्रियोंका अपहरण नहीं हुआ था। पर वह सीताका अपहरण करनेवाले शिवभक्त रावण, सिंदुरासुर, नरकासुर आदिकोंने किया था।

जिसका आक्रमण हटाने के लिये भगवान् को इतने परिश्रम करने पड़ते हैं और जिसको अन्ततक नजरबंद करके रखना पड़ता है, और जिसको खुला छोडकर अपने देशमें जानेके लिये आज्ञा नहीं दी जाती, यदि ऐसा दम्भी और स्वार्थी भी भक्तचरितोंमें आसकता है, तब तो शत्रु कौन है ?

वामन का कठिन कार्य

वामनने जो बलि का पराभव किया वह योंही सहज ही होनेवाली बात नहीं थी। बली सम्राट् था, उसके पास लडनेवाली सेना थी, सब अधिकारी उसके पास थे। ऐसी सुसज्ज रीतिसे रहनेवाले का पराभव करना सरल कार्य नहीं था। वामन के पास हाथी जैसे समर्थ वीर थे। और वे उसके पहिले उस यज्ञ मंडपमें ब्राह्मण वेषमें पहुंचे थे, उनके पास पर्याप्त शस्त्रास्त्र भी गुप्त रीतिसे रखे थे। इसी लिये असुर सैन्यका आक्रमण होनेपर वामन बचा, नहीं तो आजके भक्तोंके समान वह भोला होता तो बलीके अनुयायी सैनिकोंसे वहीं मारा जाता।

आज कल जो बलिके चित्र बताते हैं और हरिकीर्तनोंमें वर्णन करते हैं वह एक मूर्खताकी परमावधि ही है। 'कल्याण' के भक्त चरितांकमें जो बलीकी कथा दी है वही देखिये। हमने यहां जो वर्णन किया है और राज्यशासन और शत्रु दमन और नित्य दक्ष रहनेके विषयमें जो बोध बताया है, उसके लिये श्रीमद्भागवत के ही श्लोक दिये हैं। कुछ अन्य पुराणोंके भी वचन इस लेखमें दिये हैं। वे इतिहास बता रहे हैं और ऐतिहासिक बोध भी बता रहे हैं। वह न लेते हुए लेखक और वाचकोंको बुद्दू बनानेवाले पोथे छापनेसे भारत वर्षका क्या बनेगा ? इसका विचार पाठकोंको अवश्य करना चाहिये।

' कल्याण ' के लेखकने ' वृत्रासुर ' को भी भक्त बनाया है और उसका चरित्र इस अकमें दिया है। पर वृत्रासुर की कथा वेदोंमें है और वृत्रासुर का इन्द्रके साथ जो युद्ध हुआ उसका वर्णन करनेवाले हजार मंत्र वेदोंमें हैं। पर वेदोंमें कहीं भी उसको भगवद्भक्त नहीं कहा है। वृत्रासुरको इन्द्रने मारा, उसकी माताको भी मारा है, उस के अनुयायियोंको भी मारा है। वृत्रवध होनेसे ही जगत को आनंद मिला है। ' कल्याण ' के लेखक की दृष्टीसे वेद अप्रमाण होगा और आधुनिक ग्रंथ अधिक प्रमाण होंगे। हमें इसका पता नहीं है।

प्रार्थना और सूचना

' कल्याण ' के लेखक के सामने हमारी प्रार्थना यह है कि वे पौराणिक कथा लिखनेके समय जिस जिस पुराणमें वह कथा आयी हो, वहांसे वह लेकर सबकी एकवाक्यता

करके, उसमें इतिहास कितना है और अर्थवाद कितना है, इसका विचार करें और पश्चात् जो लिखना हो वह लिखें।

रामायण, महाभारत, पुराण और उपपुराणोंमें इतनाही नहीं परंतु वेद और ब्राह्मणोंमें भी एक ही गाथा विभिन्न रूपोंमें मिलती है। वृत्रासुरकी गाथा ऐसी है। इसलिये ऐसी गाथाका वेदमंत्रों, ब्राह्मणों और पुराणोंमें देखकर और सबका संग्रह और विचार तथा मिलान करके उस पर लेख लिखना योग्य है। ऐसा न करनेसे प्रमाद होनेकी संभावना है।

सब इतिहास पुराणोंके लेखक यह मानते हैं कि लेखक और वाचक संपूर्ण वाङ्मयके भाग जानते हैं। इसलिये केवल किसी एक ही ग्रंथको देखकर कुछ लिख मारना उनके साथ अन्याय करना है। सब स्थान के लेख देखनेसे ही हम पूर्ण सत्यको प्राप्त कर सकते हैं।

ऐसा न करनेके कारण जो प्रमाद होने संभव हैं वे प्रमाद हमने इस लेखमें यहां तक बताये हैं। प्रमाण वचनोंका भी तारतम्य देखना चाहिये। जो विचार वेदविरुद्ध हो उसको त्याज्य मानना चाहिये अन्यथा सनातन धर्मके सत्यासत्य निर्णयमें बाधा आ जायगी। जिस वृत्रासुरको वेदने शत्रु कहा, उसीको कल्याण के लेखक भक्त या मित्र कहेंगे, तो इससे अधिक हानि कोई नहीं होगी।

वेद बाह्य लेख

या वेदबाह्याः स्मृतयः याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वाः ता निष्फला ज्ञेयाः तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः
(मनु०)

इस तरह मनुने कहा है। यदि सनातन वैदिक धर्मको जाग्रत करनेकी इच्छा है तब तो यह इस तरह प्रमाणमानना योग्य है। ऐसा न माननेसे तमोनिष्ठ ग्रंथोंको मान्यता मिलेगी और धर्मकी हानि होगी। इन असुरोंको भक्त शिरोमणि कहनेके कारण ऐसी ही धर्मदृष्टीकी हानि हो गयी है इस ओर कल्याणके लेखकका मन हम नम्रतासे आकर्षित करना चाहते हैं।

बोधप्राप्ति

जो लेख लिखा जाय उससे आजके स्वतंत्र भारतके नागरिक को योग्य आचरणका योग्य बोध मिलना चाहिये। भारतीय नागरिक को धार्मिक क्षेत्रमें आज योग्य मार्गदर्शन होनेकी अत्यंत आवश्यकता है। सरकार निधर्मी है, ईसाई मिशनरी तथा यवन धर्मोंके प्रचारक चारों ओर घूम रहे हैं और निष्प्रतिबंध प्रचार कर रहे हैं। प्रतिदिन सवासौ डेढसौ हिंदु परधर्म में जा रहे हैं। स्कूलों और कालेजोंमें धर्मज्ञान मिलनेकी कोई आशा नहीं है। ऐसी अवस्थामें धार्मिक मासिकोंके ऊपर ही आशा रखी जा सकती है। यदि ये मासिक योग्य रीतिसे अपना कार्य न करेंगे, तो भारतमाताके पुत्रोंने आशाकी दृष्टीसे किस ओर देखना है? भारतीय तरुण किस आदर्शको अपने सामने रखें? इसका उत्तर धार्मिक मासिकोंको ही देना चाहिये।

हम ' कल्याण ' मासिक के लेखकसे प्रेमपूर्वक पूछना चाहते हैं कि इस ' भक्त चरितांक ' में जो 'विरोचन' की कथा छापी गयी है उस कथासे भारतके तरुण कौनसा बोध प्राप्त करें?

" विरोचन राजाके पास इन्द्र ब्राह्मण वेषमें जाता है और उसका जीवन मांगता है और वह विरोचन विना सोचे अपना गला काटकर इन्द्रको देता है। " इस कथासे कौनसा बोध पाठक लें?

यदि यह ब्राह्मणकी भक्ति है, तब तो इन्द्र ब्राह्मण तो नहीं था। कपट वेष धारण करके उसने ब्राह्मणका स्वांग लिया था। क्या स्वांगधारी या नामधारी ब्राह्मणोंको भी जो वे मांगेंगे वह देना चाहिये? क्या राजा भी ऐसा करें? आज ऐसा करनेसे कितनी हानि उठानी पडेगी इसका विचार लेखक करेंगे तो अच्छा होगा। राजा या राजपुरुष यदि आज ऐसा करेंगे तो उनका राज्य क्षणभरमें नष्ट हो जायगा।

वृत्रासुरकी कथासे पाठक कौनसा बोध लें? भला बलीकी कथा कौनसा बोध आजके भारतीय तरुणोंको दे रही है? क्या वृत्रासुर और बलीके समान आजके तरुण व्यवहार करें? यदि न करें तो यह कथा किस कार्यके लिये लिखी और छाप दी है? कौनसी शिक्षा ये कथाएं देती हैं? बलीकी कथामें भक्त शिरोमणी बली अनुकरणीय है? अथवा इस भक्तका कांटा निकाल देनेवाला वामन अनुकरणीय है?

जिनसे कुछ भी बोध नहीं मिलता और जिनका अनुकरण करना अयोग्य है ऐसी कथाओंका पोथा छापनेसे राष्ट्रका, धर्मका अथवा मानवताका कल्याण किस तरह हो सकता है? क्या बडे पोथे जिनमें कुछ भी सार नहीं, ऐसे छापनेसे

भारत का या किसी देशका कल्याण हो सकता है अथवा थोडा परंतु आज बोध लेने योग्य प्रकाशन करनेसे वह लाभदायक हो सकता है ?

भक्तोंमें भी तारतम्य देखो

भक्तोंमें भी तारतम्य देखना योग्य है। औरंगजेब जिस धर्मको मानता था उस धर्मका वह भक्त था। श्री जिना और लियाकत अली खान भी अपने माने धर्मके और अपने माने हुए ईश्वरके भक्त ही थे। उन्होंने अपने धर्मकी अपने विश्वासानुसार सेवा की है। चाहे वह मानव धर्म की दृष्टीसे सेवा न हो।

ईसाई पाद्री गोवामें आये थे, जिन्होंनें गोवामें हजारों मंदिर गिराये और हिंदुओंपर अनंत अत्याचार किये वे अपने धर्मके भक्त ही थे। उन्होंने अपने ईश्वरकी तुष्टीके लिये ही वे अत्याचार किये। क्या ऐसे पुरुषोंके चरित्र भक्त चरितोंमें आसकते हैं ?

हमारे विचार से भक्तोंमें भी तारतम्य देखना चाहिये। भारतीय सनातन धर्म मानवोंका अभ्युदय निश्रेय का विचार करता है और नरका नारायण कैसा हो सकता है इसका ही विचार करता है और यवन व ईसाई आदि मतमतान्तर ये मानवकी उन्नतिका विचार नहीं करते, पर अपने पंथमें लोगोंको लानेकाही आग्रह करते हैं। इसलिये हमें वेही भक्त देखने योग्य हैं, कि जो मानव की अभ्युदय निश्रेयस सिद्धमें तथा नरका नारायण होनेमें सहायक हो सकते हैं।

इसमें निःसंदेह हम कह सकते हैं कि वृत्रासुर विरोचनासुर और बली असुरकी कथाएं भक्त होकर उन्नति की साधना नहीं बता रही हैं। ये कथाएं भक्तगाथामें आने के योग्य भी नहीं हैं। वेदमंत्रों और ब्राह्मण वचनोंमें इनको शत्रु ही कहा है।

चरित्र की परीक्षा करो

भक्तांकमें किसीका नाम आनेके पूर्व उसका आद्योपान्त जीवन चरित्र तो देखना चाहिये कि इसमें कुछ भक्ति भी है वा नहीं। इसकी पडताल तो करनी चाहिये। यह पडताल की जाती तो ये चरित्र इस अंक में न आते। और भी ऐसे चरित्र इस अंकमें हैं कि जो विना विचार और पडताल के छापे हैं। स्वतंत्र भारतके अभ्युदय निश्रेयसके इच्छुक तरुण ऐसे भोलेपन के लेखोंसे क्या बोध प्राप्त कर सकते हैं ? हां हर किसीको भक्त मानकर भोलापन बढ जानेसे वे मार्गभ्रष्ट तो अवश्य हो सकते हैं।

प्राचीन भक्त

भगवान् रामचन्द्रजीका भक्त हनुमान, भगवान कृष्ण जी का भक्त अर्जुन और नारायण का भक्त नारद ये तीन भक्त उदाहरण के लिये हम ले सकते हैं। भगवान् रामचन्द्र और कृष्ण तथा नारायणके कुछ राष्ट्रीय उन्नतिके कार्यक्रम थे, इन कार्यक्रमोंमें क्या करना है यह निश्चित हो चुका था। इन कार्यक्रमोंमें संदिग्ध ऐसा कुछ भी नहीं था। इन कार्यक्रमोंमें रातदिन इन भक्तोंने कार्य किया और उनमें यश प्राप्त किया। त्रिलोकीका शत्रु रावण था, इधर कौरव थे और नारायणके सामने अनेक आक्रमणकारी असुर थे। इन सबका नाश करनेका कार्य करना इन भक्तोंका कर्तव्य था। जो उन्होंने किया। हनुमानजी केवल ' राम राम ' करके जप करते थे ऐसा किसी माननीय ग्रंथमें नहीं है। अर्जुन भी 'कृष्ण कृष्ण' करके नामजप करता था ऐसा भी भारतमें किसी स्थानपर नहीं है। नारदमुनि क्या करते थे इसका ठीक पता नहीं, पर ये वीणाके साथ भ्रमण करते रहते थे इसलिये कुछ जप करते होंगे। पर उनका मुख्य कार्य राक्षस विध्वंसमें मदत करनाथा, वह ये हर प्रकारकी युक्ति करके करते थे। ये तीनों सच्चे भक्तशिरोमणी कहने योग्य हैं और इन तीनोंने राष्ट्रकी स्वतंत्रता प्राप्त करनेके कार्यमें अविश्रान्त परिश्रम किये थे। प्राचीन समय का कोई भक्त ऐसा दीखता नहीं कि जिसने किसी न किसी महान् राष्ट्रोद्धारके कार्यमें भाग न लिया हो। इन भक्तोंके चरित्र आज भी स्वतंत्र भारतके अभ्युदयेच्छुक तरुणोंके सामने रखे जाने योग्य माने जा सकते हैं। ये भक्त उत्तम हैं, अनुकरणीय हैं, आदर्श हैं। किसी न किसी राष्ट्रहितके कार्यमें अपने आपको समर्पित करना भक्त के लिये आवश्यक है।

भक्ति का अर्थ जनसेवा

" ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र " ये मानव समुदाय विराट् पुरुष परमात्माके " सिर-बाहु पेट-पांव " हैं। इस परमात्माकी सेवा करनेका नाम राष्ट्रसेवा है। भक्तिका

मूल अर्थ ही सेवा है ' भज् सेवायां ' इस धातुसे 'भक्त, भक्ति ' ये शब्द बनते हैं ' इसलिये जनताजनार्दनकी प्रत्यक्ष सेवा करनेका कार्य ही भक्तिसे जाना जाता था । जब तक यह इसका अर्थ था तब तक ठीक था। कुछ न कुछ कार्यक्रम भक्तोंके सामने रहता था। पर अब वैसा कुछ भी नहीं होता है।

अर्जुनके सामने दुष्टोंके दमन करनेका और राष्ट्रोद्धारका कार्यक्रम भगवान् श्रीकृष्णने रखा था । पर अर्जुन कहने लगा कि "मैं वनमें जाकर नाम जप करता हुआ कंद मूल फल खाऊंगा, मैं इस युद्धके कार्यक्रममें शामील नहीं होता।" यह सुनकर भगवानने उसका कान पकड कर उससे कहा कि "यह कार्य करना हो तो करो, तुमने नहीं किया तो मैं दूसरा वीर लाकर यहा रखूंगा और यश उसे मिलेगा, तुम्हारी दुष्कीर्ति होगी" ' यथेच्छसि तथा कुरु ' इतना सुननेपर अर्जुन होशपर आ गया और भगवानके कार्यक्रममें शामिल हुआ। ये आदर्श भक्त हमारे पास हैं। पर आज भक्तोंके चरित्र हम कैसे देखते हैं ?

कोई भक्त स्त्री नामजप कर रही है उसका आटा भगवान् पीस रहे हैं, कोई नाम जप कर रहा है उसके कपडे भगवान धोरहे हैं, कोई नाम जप कर रहा है उसका हल भगवान जोत रहे हैं, ऐसे एक दो नहीं सैंकडों काम भगवान् कर रहे हैं। न कोई भगवान्के पास राष्ट्रीय कार्यक्रम है और न किसी भक्तको उसमें शामिल होना है। किसीका आटा पीस लिया, या किसीकी रोटियां तैयार की, तो भगवान्का कार्य हुआ। ये सब भक्तगाथाएं देखने से स्पष्ट विदित हो जाता है कि महाभारतके रचयिता व्यासजीके समान अथवा रामायणके रचयिता वाल्मिकीके समान मस्तिष्क इनके पास रहे नहीं, जो जागतिक हितकी बातें सोच सकते हों। इसलिये मोगलोंने आकर यहां हाहाकार मचाया, और अंग्रेजोंने आकर सब लूट लिया, तो इनको उसकी कोई फिकर नहीं, पर ये फलानेका आटा पीसनेके लिये भगवानको बर्त रहे हैं। न कोई राष्ट्रीय उन्नतिका कार्यक्रम है न जातीय अभ्युत्थानकी कोई कल्पना है।

नारदका आदर्श देखो

नारदमुनिकी ओर ही आप देखिये। एक एक राक्षसका वध करवानेकी योजना वे ऐसी युक्तिसे करते और करवाते हैं कि वह बुद्धि कौशल देखकर मन उस पुरुषके विषयमें आश्चर्यचकित होता है। इसका नाम भक्ति है। भक्तिका अर्थ राष्ट्रसेवा, जातीके अभ्युत्थानकी योजनामें आत्मसर्वस्वका समर्पण। पर वह इन आजकलके भक्तोंमें है कहां ? इनको तो आटा पीसनेकी चिंता है !

भक्तिकी जो कल्पना वेदादि ग्रंथों और रामायण महाभारतमें दीखती है वह सच्ची भक्ति है। उस भक्तिकी ओर भारतीय तरुणोंको आकर्षित करना चाहिये। हनुमान, अर्जुन और नारदकी कसौटीसे इन आधुनिक भक्तोंके चरित्र परखे जांय तो एक भी भक्त स्थानपर नहीं रहेगा । हनुमान अर्जुन और नारदके कर्तृत्वसे उस उस समयके राष्ट्रका कल्याण हुआ था। यह इतिहासमें हम देख सकते हैं। यह भक्ति मानव समाजका उद्धार करनेवाली है।

विश्वरूपी ईश्वर

ईश्वर विश्वरूप है। यह वेद-उपनिषद्-गीतादि ग्रंथोंमें कहा है। गीताका ग्यारहवाँ अध्याय इसीलिये है। इस ईश्वरकी सेवा करना ही भक्ति है। ' भज् सेवायां ' का अर्थ यह सेवा है। यह सेवा हनुमान, अर्जुन नारदने की इसलिये उनका तारण हुआ। किससे कितनी विश्वसेवा हो रही है, इससे उसकी भक्तिका प्रमाण विदित हो सकता है।

कागजी भक्त

आज कल हम देखते हैं कि भक्त नामजप करते रहते हैं। ' कल्याण ' के संघने तो सैकडो ऐसे पुरुषोंके संघ बनाये हैं जो नाम जप करनेमें महिनेके महिने व्यतीत करते हैं। कागज पर रामनाम लिखनेवाले हजारों निर्माण किये हैं। आजकी भक्ति यह है। विश्व सेवाका नामनिशान नहीं है। रामनामके हजारों रीम के रीम लिखे जा रहे हैं। हमने कई तरुण ऐसे देखे हैं कि जो ये नाम लिख लिखकर भेजते रहते हैं। आजकी कागजकी महार्घताके दिनोंमें ऐसा कागजका और समयका अपव्यय कोई दूसरे लोग नहीं कर सकेंगे।

' गोपाल ' नाम कागजपर लिखने मात्रसे राष्ट्रमें गौओं का पालन होगा और जनता गोदुग्ध पीकर हृष्ट पुष्ट होगी, ऐसा मानना मूर्खता है। गोपालकी भक्तिमें प्रत्यक्ष गौओंका

पालन करनेका कार्य है। यह होगा तो ही मानव जातीका उद्धार हो सकता है। इसी तरह 'राम' का अर्थ 'आनंद देनेवाला' है। भक्तको ऐसे कार्य करने चाहिये जिससे विश्व में आनंद बढे। केवल रामनामको रटनेमात्रसे यह कार्य कदापि नहीं होगा। भक्तिके साथ अनुष्ठान अत्यंत आवश्यक है। नाम जपसे केवल वाक् इंद्रिय कार्य करता है, बाकी शरीर मन बुद्धि उस नामसे सूचित होनेवाले अनुष्ठानमें अर्पित होंगे तो सच्ची और पूर्ण भक्ति होगी। ऐसे भक्त हनुमान-अर्जुन-नारद हो चुके। वे आदर्श हमारे सामने रहने चाहिये। विनाविश्वसेवा के अनुष्ठानके कोई भक्ति सच्ची भक्ति नहीं होती, यही तत्व आज जनताके ध्यानमें आना चाहिये।

विश्वसेवाके हजारों कार्य अपने राष्ट्रमें वैसे ही पडे हैं, उनके करनेके लिये कोई आदमी आगे नहीं आता और इधर अनुत्पादक नाम रटनेमें लोग जा रहे हैं अथवा ऐसे कार्योंमें जानेकी उत्तेजना दी जा रही है। यह भक्ति नहीं, यह तो कालका अत्यंत शोचनीय अपव्यय है।

यहां आकर खिस्ती मिशनरी कोढियोंकी और रोगियोंकी सेवा कर रहे हैं, शिक्षा संस्था निकाल कर लोगोंको शिक्षा दे रहे हैं, सैंकडों और हजारों विदेशी ईसाई जनसेवा यहां इस देशमें, आफ्रिकामें तथा अन्यान्य देशोंमें कर रहे हैं और अपने पथमें लोगोंको खींच रहे हैं। पर सेवा कर रहे हैं और हमारे लोग कुछ भी जनसेवा न करते हुए ऐसे पोथे छाप रहे हैं कि जिससे कुछ भी किसीका लाभ न हो सके।

हमारे पास एक ७० वर्षोंकी आयुका भक्त आया था, वह कागजपर ॐ लिखता था। लाखवार उसने ॐ लिखे थे। अत्यंत सुंदर लिखता था। लाखवारमें एक भी स्थान पर कुछ भी दोष नहीं था। उसने गत ३० वर्षोंमें अन्न या पानी पीया नहीं था। ॐ वह लिखता और किसीसे कुछ संबंध रखता नहीं था। पुत्रोंसे तथा पत्नीसे भी बोलना नहीं था। ॐ लिखना। ऐसे भक्त हिंदुओंमें होते हैं। और कोढियों और रोगियोंकी सेवा कर विश्वरूपकी सेवा करके विश्वात्मा-को संतुष्ट करनेवाले ईसाईयोंमें भक्त होते हैं। जगत्में कौन जीतेगा? और ईश्वरके पास किसकी भक्ति पहुंचेगी?

ईश्वरके नामजपका महत्त्व

ईश्वरके नामजपका महत्त्व है। एकतो कर्ताका मन स्थिर करनेमें वह सहायक होता है। अष्टभाव जपकर्ताके अनुभवमें आसकते हैं। यह तो वैयक्तिक लाभ है। इसके साथ जनसमुदायकी भलाई करनेका एक एक कार्यक्रम जपकर्ताके सामने ये नाम रखते हैं जैसा—

१ हरि— जनताके दुःखोंको दूर करना.

२ राम — जनताको आनन्द देना,

३ गोविंद — इंद्रियोंको स्वाधीन रखना, गौओंको प्राप्त करना और बढाना,

४ हृषीकेश — अपने इंद्रियोंपर अपना अधिकार स्थापन करना,

५ गोपाल — गौओंका पालन करना, गोरक्षा करना,

ईश्वरके लाखों नामोंसे सहस्त्रों सार्वजनिक हितके कार्य-क्रम प्रकट हो रहे हैं। नाम जपका उद्देश्य ये कार्यक्रम भक्त लोग करें यह है। पर इस समय यह भक्तों द्वारा एक भी कार्यक्रम नहीं हो रहा है।

हमारी अन्तमें प्रार्थना यह है कि हिंदु भक्त निष्क्रियता छोडें, विश्वरूपी नारायण की सेवा करनेके कार्यक्रमोंमें अपने आपको अर्पण करें और वैयक्तिक मनोमूर्छनाको अन्तिम ध्येय न मानकर, प्रत्यक्ष जनताजनार्दनकी सेवा नारद-हनुमान-अर्जुनके समान करनेके विना सद्गति नहीं है, यह जानकर वैसा करनेमें अपना जीवन व्यतीत करें और अपने जीवनको सफल, सुफल और कृतकृत्य बनावें। आज भारतवर्षके अभ्युदय निश्रे-यसके लिये ऐसे भक्तोंकी आवश्यकता है।

२३१ अस्मे प्रियाणि भद्राणि सश्चत- हमें प्रिय कल्याण प्राप्त हों ।

२३२ कृष्टीनां वृषभं नून ऊतये गृणाति- मानवोंमें बलवान् वीरको मानवोंके रक्षणार्थ बुलाते है ।

२३३ नः सहस्रिणः वाजान् उपमाहि- हमें सहस्रों धन मिलें ।

(ऋ० ७।२७)

२३४ नरः पार्या धियः युनजते- नेता लोग संकटोंसे पार होनेके लिये अपनी बुद्धियोंका उपयोग करते है ।

२३४ नेमधिता नरः इन्द्रं हवन्ते- युद्धमें नेता इन्द्रको सहायार्थ बुलाते हैं ।

२३४ शूरः नृषाता शवसः चकानः- शूर मनुष्योंको योग्यतानुसार धनका बंटवारा अपने सामर्थ्यसे करता है ।

२३५ यः ते शुष्म अस्ति, सखिभ्यः नृभ्यः शिक्ष- जो तेरा सामर्थ्य है वह अपने मित्र नेताओंको सिखाओ ।

२३५ त्वं विचेताः परिवृतं राधः नः अपवृधि— तूं ज्ञानी शत्रुके गुप्तधनको हमारे सामने प्रकट कर ।

२३६ जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा- जंगम पदार्थों और मानवोंका इन्द्र राजा है ।

२३६ अधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति- पृथिवीपर जो कुरूप या सुरूप वस्तुमात्र है (उसका भी राजा वही प्रभु है ।)

२३६ दाशुषे वसूनि ददाति— वह दाताको धन देता है ।

२३६ उपस्तुतः चित् राधः चोदत्- स्तुति करनेपर धनको स्तोताके पास प्रेरित करता है ।

२३७ दानः मघवा नः सहूती नः ऊती वाजं नियमते- दानी इन्द्र हमारे बुलाने पर हमारे संरक्षणके लिये हमें बल देता है ।

२३७ यस्य अनूना दक्षिणा सखिभ्यः नृभ्यः वामं पीपाय— इसकी भरपूर धनकी पूंजी समान विचारवाले नेताओंको धन पहुंचाती है ।

२३८ नः राये वरिवः कृधि- हमारे लिये श्रेष्ठ धन दो ।

२३८ गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः- गौ घोडे और रथवाला धन हमे चाहिये ।

(ऋ० ७।२८)

२३९ हे विश्वमिन्व ! त्वा विश्वे मर्ताः चित् विह्वन्त— हे विश्वको संतोष देनेवाले वीर ! तुझे सब मानव बुलाते हैं ।

२४० हस्ते वज्रं आदधिषे, घोरः सन् क्रत्वा अषाळ्हः जनिष्ठाः— तू हाथमें वज्र धारण करता है, और भयंकर होकर, अपने कर्तृत्वसे शत्रुके लिये असह्य होता है ।

२४१ तव प्रणीती नून रोदसी संनिनेथ— तुम्हारी पद्धतीके अनुसार नेता वीरोंको तुम इस विश्वमें चलाते हो ।

२४१ महे क्षत्राय शवसे जज्ञे— बडे क्षात्रतेजके लिये और बलके लिये (यह वीर) उत्पन्न हुआ ।

२४१ तूतुजिं अतूतुजिं अशिश्नत्— उदार कंजूसको पीछे रखता है ।

२४२ दुर्मित्रासः क्षितयः पवन्ते, एभिः अहभिः नः दशस्य— दुष्ट लोग सज्जनोंपर आक्रमण करते है, उनको इन दिनोंमें हमारे अधीन कर ।

२४२ अनेनाः मायी वरुणः— निष्पाप कर्ममें कुशल वरुण है ।

२४२ यत् अनृतं प्रतिचष्टे, द्विता अवसात्— जो असत्य हममें दिखाई देगा, वह द्विधा होकर दूर हो जावे ।

२४३ महः राधसः रायः न — बडी सिद्धि देनेवाले धन हमें प्राप्त हो जाय ।

२४३ ब्रह्मकृतिं अविष्ठ — ज्ञानपूर्वक की हुई कृतिका रक्षण कर ।

(ऋ० ७।२९)

२४७ ते पुरुष्याः असन्— तुम्हारे मानवोंका हित करनेके ये प्रयत्न होते हैं ।

२४७ त्वं प्रमतिः असि— तू उत्तर बुद्धिमान हो ।

(ऋ० ७।३०)

२४९ देव शुष्मिन् सुवज्र शूर नृपते— दिव्यगुण संपन्न बलवान् उत्तम वज्रधारी शूर राजा !

२४९ शवसा आयाहि— अपने बलसे यहां आओ ।

२४९ अस्य रायः वृधे भव— इसका धन बढाओ ।

२४९ अस्य महे नृम्णाय भव— इसके बडे सामर्थ्यको बढाओ।

२४९ अस्य महि क्षत्राय पौंस्याय भव— इसके बडे क्षात्र पौरुषको बढानेवाला हो।

२५० विश्वेषु जनेषु शूरः सेन्य — सब मनुष्योंमें शूर ही सेनामें भरती करने योग्य है।

२५० त्वं सुहन्तु वृत्राणि रन्धय— तू उत्तम मारक शस्त्रसे शत्रुओंका नाश कर।

२५१ अहा सुदिना व्युच्छात्— दिन अच्छे दिन होकर प्रकाशित होते रहे।

२५१ समत्सु केतं उपमं दधः— युद्धोंका ज्ञान उपमा देने योग्य धारण करो।

२५१ असुरः सुभगाय अत्र निषीदत्— बलवान् वीर उत्तम भाग्य प्राप्त करनेके लिये यहा हमारे पास बैठे।

२५२ सूरिभ्यः उपमं वरूथं यच्छ— विद्वानोंको उत्तम धन दो।

२५२ स्वाभुवः जरणां अश्नवत— उत्तम ऐश्वर्यवाले वृद्धावस्थाका भोग करे।

(ऋ० ७।३१)

२५६ त्वं नः वाजयुः— तू हमें अन्न बल तथा धन दे।

२५६ त्वं गव्यु हिरण्ययु — तू हमें गौएं और सुवर्ण दे।

२५८ अर्यः वक्तवे निदे अराव्णे नः मा रन्धि- तू स्वामी है, अत. कठोरभाषी, निंदक, कंजूसके अधीन हमें न कर।

२५९ त्वं वर्म असि— तूं कवच के समान रक्षक है।

२५९ पुरोयोधा असि— तू सामने जाकर शत्रुसे युद्ध करनेवाला है।

२५९ त्वया युजा प्रतिब्रुवे— तू साथ रहनेसे मैं शत्रुको योग्य उत्तर दूंगा।

२६१ कृष्टयः ते संनमन्ते— प्रजाजन तुम्हें प्रणाम करते हैं।

२६३ मंह महीवृधे प्रभरध्व— बडे राष्ट्रका संवर्धन करनेवाले वीरका सत्कार करो।

२६३ प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं- विशेष ज्ञानीकी प्रशंसा करो।

२६३ चर्षणिप्राः विशः प्रचर— किसानोंकी इच्छाएं पूर्ण करना है तो प्रजाजनोंमें भ्रमण करो।

२६४ अरुव्यचसे महिने सुवृक्तिं- विशेष यशस्वी बडे वीरकी प्रशंसा करो।

२६४ विप्रा ब्रह्म जनयन्त— ज्ञानी ज्ञानका प्रचार करते हैं।

२६४ तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति— उस प्रभुके नियमोंका धीर पुरुष निषेध नहीं करते।

२६५ अनुत्तमन्युः राजा- राजा उत्साही हो।

२६५ सहध्यै इन्द्रं वाणीः दधिरे- बल बढानेके लिये इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं।

(ऋ० ७।३२)

२६८ रायस्कामः वज्रहस्त सुदक्षिणं हुवे— धनकी इच्छा करनेवाला वज्रधारी उत्तम दक्षवीरका गुणगान करे।

२७० श्रुत्कर्णः वसूनां ईयते- प्रार्थना सुननेवाले प्रभुके पास वीर धनके लिये जाते हैं।

२७० दित्सन्तं न किः आ मिनत्-वह देने लगा तो उसे कोई रोक नहीं सकता।

२७१ इन्द्रेण अप्रतिष्कुतः सः वीरः नृभिः शशुवे- इन्द्रके द्वारा प्रतिबन्ध न होनेपर वह वीर मानवों द्वारा संमानित होता है।

२७२ मघवन्! मघानां वरूथं भव-हे धनवान् वीर! तू धनोंका संरक्षक कवच जैसा हो।

२७२ शर्धतः समजासि— स्पर्धा करनेवाले शत्रुका निवारण कर।

२७२ त्वाहतस्य वेदनं विभजामहि—तुम्हारे प्रयत्नसे शत्रुका नाश होनेपर उसका धन हम आपसमें बांट लेंगे।

२७२ दुर्नशः गय आभर- अविनाशी घर हमें चाहिये।

२७३ मयः पृणन् पृणते- सुख देता हुआ (शुभकर्म) पूर्ण करता है।

२७४ महे आतुजे राये कृणुध्वं- बडे शत्रुका विनाश और धन प्राप्त करो।

२७४ तरणिः इत् जयति- त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला विजयी होता है। (सुभा० सं० १९६)

२७४ तरणिः इत् क्षेति- त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला ही सुखसे यहां रहता है।

२७४ तरणिः इत् पुष्यति- त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला ही यहां पुत्र पौत्र धन धान्यसे पुष्ट होता है

२७४ कवत्नवे देवासः न- कुत्सित कर्म करनेवालेके लिये देव सहायता नहीं करते।

२७५ सुदासः रथं नकिः पर्यास- उत्तम दाताके रथको कोई रोक नहीं सकता।

२७६ हे इन्द्र! त्वं यस्य आविता भुवः, मर्तः वाजयन् वाजं गमत्- हे प्रभो! तू जिसका संरक्षक होता है वह मनुष्य अपना बल बढाकर बलवान् होता है।

२७६ अस्माकं नृणां आविता बोधि- हमारे मानवोंका संरक्षक बन।

२७७ जिग्युष धनं- विजयी वीरका धन होता है।

२७७ त रिपः न दभन्ति- उस विजयी वीरको शत्रु नहीं दबाते।

२७९ वाजी पार्यं वाजं सिषासति- बलवान् वीर दु.खसे पार करनेवाले बलको प्राप्त करता है।

२८० सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम- विद्वानोंकी सहायतासे सब कष्टोंको पार करेंगे।

२८१ हे इंद्र! त्व अवमं मध्यमं वसु पुष्यासि विश्वस्य परमस्य राजसि- हे प्रभो! तू निकृष्ट मध्यम और श्रेष्ठ धनको बढाता है और उसपर प्रभुत्व करता है।

२८२ त्वं विश्वस्य धनदा श्रुतः असि- तू सबमें प्रसिद्ध धनका दाता है।

२८२ ये आजयः भवन्ति- जो युद्ध होते हैं (उनमें भी तूही वीर करके प्रसिद्ध है।)

२८२ अयं विश्वः पार्थिवः अवस्युः नाम भिक्षते- ये सब पृथ्वीपरके मनुष्य अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारा ही नाम लेते हैं।

२८३ एतावत् अहं ईशीय— इतना धन मेरा हो।

२८३ पापत्वाय न रासीय- पाप बढानेके लिये धनका उपयोग नहीं करूंगा।

२८४ हे मघवन्! नः आप्यं, त्वत् अन्यत् नहि- हे प्रभो! तू ही हमारा बन्धु है, तेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं।

२८५ तरणिः पुरंध्या युजा वाजं सिषासति— कुशलतासे सत्वर कार्य करनेवाला विशाल बुद्धिसे अन्न और बल प्राप्त करता है।

२८५ त्वष्टा सुद्रु नेमिं— सुतार उत्तम लकडांमे रथचक्र तैयार करता है।

२८६ बहुस्तुतं गिरा आनमे — बहुतो द्वारा प्रशंसित वीरको मैं अपने भाषणसे अपना नम्रभाव प्रकट करता हूं।

२८६ दुष्टुती मर्त्यः वसुः न विन्दते- दुष्टकी प्रशंसा करनेवाला मनुष्य धन नहीं प्राप्त कर सकता।

२८६ स्त्रेधन्तं रयिः न नशत्— हिंसकको धन नहीं मिलता।

२८६ पार्ये सुशक्तिः देष्ण विन्दते— दुःखसे पार होनेके समयमें अच्छी शक्ति वाला ही धन प्राप्त करता है।

२८७ अस्य तस्थुषः जगतः स्वर्दृशं ईशान अभिनोनुमः— इस स्थावर जंगम विश्वके दिव्य दृष्टीवाले ईश्वरको हम सब प्रणाम करते हैं।

२८८ दिव्यः पार्थिवः त्वावान् अन्यः न जातः न जनिष्यते— द्युलोकमें अन्तरिक्षमें और पृथ्वीपर तेरेसे भिन्न कोई दूसरा ईश्वर न हुआ और न होगा।

२८८ गव्यन्त. अश्वायन्तः वाजिनः त्वा हवामहे- गौओं, घोडोंको चाहनेवाले तथा बल बढानेकी इच्छा करनेवाले हम तेरी प्रार्थना करते हैं।

२८९ ज्यायः कनीयस नत् अभ्याभर— बडाभाई छोटेभाईको धन देता है, वैसा हमें दे दो।

२८९ सनात् पुरुवसुः आस— तू सदा धनवान है।

२८९ भरे भरे हव्यः- प्रत्येक युद्धमे तूं बुलाने योग्य है।

२९० अमित्रान् परा नुदस्व— शत्रुओंको दूर कर।

२९० नः वसु सुवेदा कृधि— हमें धन सुखसे प्राप्त हो ऐसा कर।

२९० महाधने सखीनां अविता वृधः बोधि— युद्धोंमें मित्रोंका रक्षण करनेवाला और बढानेवाला हो।

२९१ पुत्रेभ्यः पिता, तथा त्वं न क्रतुं शिक्ष, आभर— जैसा पुत्रोंको पिता वैसा तू हमें शुभकर्मोंकी शिक्षा दो और हमारी शक्ति बढा दो। (सुभा० सं० ४२९)

१९१ अस्मिन् यामनि जीवा· ज्योतिः अशीमहि— इस अवसरपर हम जीवित रहें और ज्योतिको प्राप्त करें।

१८२ अज्ञाता आशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा अवक्रमुः— अज्ञातमार्गसे अशुभ दुष्ट हिंसक हमपर आक्रमण न करें।

१९१ वयं प्रयतः शश्वतीः अप· अतितराम- हम सब अपना संरक्षण करनेमें समर्थ होकर, सदा कर्मोंको निर्विघ्नतया कर सकेंगे।

(ऋ० ७।३३)

१९५ एभिः सिन्धुं कं ततार— इन साधनोंसे सिन्धुको सुखसे पार किया।

१९५ एभिः भेदं जघान— इन साधनोंसे आपसकी फूटका नाश किया।

२९६ ब्रह्मणा वः पितॄणां जुष्टी— ज्ञानसे आपके पितरोंकी भी प्रसन्नता होती है।

२९६ अक्षं अव्ययं— रथका अक्ष न टूटनेवाला हो।

२९६ न रिषाथ— तुम क्षीण न बनो।

२९६ इन्द्रे शुष्मं अदधात— वीर इन्द्रका बल बढा दो।

१९७ तृष्णजः वृतासः नाथितासः उदद्यौयुः- प्यासे, शत्रुसे घेरे हुए, उन्नति चाहनेवाले वीरोंने प्रभुकी प्रार्थना की।

२९७ तृत्सुभ्यः उरुं लोकं अकृणोत्— उन्नतिकी इच्छा करनेवाले (भक्तोंको इन्द्रने) बडा विस्तृत राष्ट्र कर दिया।

२९८ गो-अजनासः दण्डाः, भरता परिच्छिन्नाः आसन्— गौओंको चलानेके दण्डेके समान भरत लोग निर्बल और आपसकी फूटसे विभक्त थे।

२९८ तृत्सूनां पुर एता वसिष्ठः अभवत्— उन भरतोंका वसिष्ठ पुरोहित नेता-बना।

२९८ आदित् तृत्सूनां विशः अप्रथन्त- इससे भरतों की प्रजा उन्नत हुई।

२९९ ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्रः प्रजाः— ज्योतिको अग्रभागमें रखनेवाले आर्य (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) ये तीन प्रकारके प्रजाजन हैं।

२९९ भुवनेषु त्रयः रेतः कृण्वन्ति- भुवनोंमें ये तीन (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) वीर्य शक्ति बढाते हैं।

२९९ त्रयः घर्मासः उषसं त्रयन्ति- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके तीनों कर्तव्य उषःकालमें शुरू होते हैं।

३०० सूर्यस्य ज्योतिः, समुद्रस्य गंभीरः, वातस्य प्रजवः- सूर्यकी ज्योति, समुद्रकी गंभीरता, वायुका वेग ये शक्तियां है। मनुष्यमें तेज गंभीरता और वेग हो।

३०० अन्येन अन्वेतवे न- किसी दूसरेके द्वारा अनुकरण करने योग्य ये नहीं है।

३०१ हृदयस्य प्रकेतैः निण्यं सहस्रवल्शं अभि- संचरन्ति- हृदयकी ज्ञानशक्तियोंसे गुप्तरीतिसे सहस्रों वर्षोंतक (ज्ञानी इस विश्वमें) चारों ओर संचार करते हैं।

३०१ यमेन ततं परिधिं वयन्तः- यमके द्वारा फैलाये आयुष्य रूपी वस्त्रको लोग बुनते जाते हैं।

३०४ यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्- यमके फैलाये आयुष्य रूप वस्त्रको यह बुनेगा।

३०६ वः वसिष्ठः आगच्छति, सुमनस्यमानाः एनं आध्वं— तुम्हारा निवास करानेवाला ज्ञानी तुम्हारे पास आरहा है, प्रसन्नचित्तसे तुम उसका आदर करो।

३०७ शुक्रा मनीषा देवी— बल बढानेवाली बुद्धि देवी है।

३०७ सुतष्टा वाजी रथः— उत्तम बनावटका उत्तम बलवान् घोडोंवाला रथ (जैसा चलता है, वैसे तुम प्रगति करो)

३०९ वृत्रेषु उग्राः शूराः मंसन्ते- शत्रुओंका हमला होनेपर शूर वीर ही आगे होते हैं।

३११ यज्ञं अभि प्रस्थात- यज्ञ स्थानमें जाओ।

३११ त्मना यात- स्वयं स्फूर्तिसे जाओ।

३११ पत्मन् हिनोत— मार्गमें वेगसे चलो।

३१२ समत्सु त्मना वीरं हिनोत— युद्धोंमें स्वयं स्फूर्तिसे वीरको भेजो।

३१२ जनाय केतुं यज्ञं दधात— लोगोंके हितके लिये ज्ञान और कर्म करते रहो।

३१३ शुष्मात् भानुः उदार्त— बलसे सूर्य उदय होता है। (सुभा० स० ४६१)

३१२ शुष्मात् पृथिवी भारं बिभर्ति— बलसे पृथ्वी भारको धारण करती है।

३१३ भूम शुष्मात् भारं बिभर्ति— उत्पन्न हुए भूत बलसे भार उठाते हैं।

३१४ अयातुः ऋतेन साधन् देवान् व्हयामि— अहिंसक रहकर सत्यसे साधना करता हुआ सहायार्थ देवोंको बुलाता हूं।

३१५ देवीं धियं अभिदधिध्वं— दिव्य गुणवाली बुद्धि का धारण करो।

३१५ देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं— दिव्य भावोंको प्रकट करनेवाली वाणी बोलो।

३१७ राष्ट्राणां राजा अस्मै अनुत्तं क्षत्रं विश्वायु- राष्ट्रोंके राजाके लिये प्रबल क्षात्रतेज और दीर्घ आयु प्राप्त हो।

३१८ विश्वासु विक्षु अस्मान् अविष्ट - सब प्रजा-जनोंमें हम सबकी सुरक्षा हो।

३१८ निनित्सोः शंसं अधुं कृणोत— निन्दकोंकी निंदाको निस्तेज कर।

३१९ द्विषां दिद्युत् अशेषाः विष्वक् व्येतु- शत्रु-ओंके शस्त्र निष्फल होकर चारों ओर व्यर्थ जांय।

३१९ तनूनां रपः विष्वक् वियुयोत— शारीरिक पाप हमसे दूर हो।

३२१ अपां न-पातं सखायं कृध्वं- जीवनको न गिरा-नेवालोंको अपना मित्र बनाओ।

३२१ देवेभिः सजूः नः शिवः अस्तु- विबुधोंके साथ रहनेवाला हमारे लिये सुखदायी हो।

३२३ बुध्न्यः अहिः नः रिषे मा धात्- मूलतः बढने-वाला शत्रु हमारा विनाश न करे।

३२३ अस्य ऋतायोः यज्ञः मा विघत्— सत्यके लिये जिसने अपनी आयु दी है उसका यज्ञ नष्ट न हो।

३२४ नृषु श्रवः धुः- मानवोंमें यश फैले।

३२५ राये शर्धन्तः अर्यः प्रयन्तु- धन प्राप्तिमें स्पर्धा करनेवाले हमारे शत्रु दूर भाग जाय।

३२५ महासेनासः अमेभिः शत्रुं तपन्ति- बडी सेनावाले सेनापति अपने बलोंसे शत्रुको ताप देते है।

३२६ सुपाणिः त्वष्टा पत्नीः वीरान् दधातु- कुशल शिल्पी प्रभु पत्नियोंमें वीर पुत्रोंको धारण करे।

३२८ रातिषाचः नः वसूनि रासन्— दान देने-वाले हमें धन दें।

३२९ न रायः पर्वताः आप. ओषधीः परिपासतः- हमारे धनका संरक्षण पर्वत नदिया औषधिया करती है।

३३० रायः धियध्यै धरुणं स्याम— धनका धारण करनेके लिये हम धारण करनेमें समर्थ बनें।

(ऋ० ७।३५)

३३३ पुरंधिः नः शं— विशाल बुद्धि हमें शान्ति देने-वाली हो।

३३३ रायः शं— धन शान्ति देनेवाला हो।

३३३ सुयमस्य सत्यस्य शंसः शं— उत्तम संयम पूर्वक किया हुआ सत्यका वर्णन शान्ति बढानेवाला हो।

३३५ सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु— सत्पुरुषोंकी पुण्यकारक कृतिया हमे शान्ति देनेवाली हों।

३३८ ब्रह्म नः शं— ज्ञान हमें शान्ति देनेवाला हो।

३३९ पर्वताः सिन्धवः नः शं- हमारे पर्वत और हमारी नदियां हमे शान्ति देनेवाली हों।

३४१ क्षेत्रस्य पतिः नः प्रजाभ्य शं अस्तु- देशका राजा हमारी सब प्रजाके लिये शान्ति देनेवाला हो।

३४२ सरस्वती धीभिः सह शं अस्तु- विद्या देवी बुद्धियोंके साथ शान्ति बढानेवाली हो।

३४३ सत्यस्य पतयः नः शं— सत्यके पालन करने-वाले हमारे लिये शान्ति देनेवाले हों।

३४३ सुकृतः सुहस्ताः नः शं- कुशल शिल्पी हमें शान्ति देनेवाले हों।

(ऋ० ७।३६)

३४८ इनः अदब्धः पदवीः— स्वामी न दबनेवाला हो और लोगोंकी परीक्षा करके उनको योग्यस्थान देनेवाला हो।

३५३ वजिनः नः तोकं धियं च अवन्तु–बलवान् वीर हमारे पुत्र और बुद्धियोंका संरक्षण करें।

३५३ ते नः युज्यं रयिं अवीवृधन्— वे हमारे योग्य धनको बढावें। (सुभा० सं० ४९५)

३५४ महीं अरमतिं प्रकृणुध्वं—पृथ्वीपर विशाल कार्यक्षेत्र अपने लिये निर्माण करो।

३५४ विदथ्यं पूषणं वीरं प्रकृणुध्वं- युद्धके लिये योग्य हृष्टपुष्ट वीरपुत्रको निर्माण करो ।

३५४ धियः अवितारं भगं प्रकृणुध्वं— बुद्धिपूर्वक किये कर्मका संरक्षण करनेवाले भाग्यवान् पुत्रको निर्माण करो ।

३५४ सातौ पुरंधिं रातिषाचं वाजं प्रकृणुध्वं-युद्धके समय ग्रामरक्षण करनेवाले, दान देनेवाले बलवान पुत्रको निर्माण करो ।

३५५ प्रजायै वयः धुः— प्रजाके लिये अन्न दिया जावे।

३५६ ऋभुक्षणः वाजाः— शिल्पियोंका निवास करनेवाले अन्न हैं।

३५७ ऋभुक्षणः स्वर्दृशः- शिल्पियोंका निवास करनेवाले आत्मनिरीक्षक होते हैं ।

३५७ अमृक्तं रत्नं धत्त— सुरक्षित रहनेवाला रत्न हमें दो ।

३५७ मतिभिः राधांसि नः दयध्वं—बुद्धियोंके साथ धन हमें दे दो ।

३५८ महः अर्भस्य वसुनः विभागे देष्णं उवोचिथ-बडे अथवा छोटे धनके दानके समय देने योग्य धनके दान करनेकी घोषणा कर ।

३५८ ते उभा गभस्ती वसुना पूर्णा- तुम्हारे दोनो हाथ धनसे भरपूर है ।

३५८ सूनृता वसव्या न नियमते— सत्यभाषण करनेवाली वाणीको धन देनेके समय कोई नहीं रोकता।

३५९ इन्द्रः स्वयशाः ऋभुक्षाः- इन्द्र वीर यशस्वी है और शिल्पियोंको वसानेवाला है ।

३५९ वाजः साधुः— अन्न बल बढानेवाला है ।

३६० धीभिः विवेषः— अपनी बुद्धियोंसे चारों ओर फैलो ।

३६० प्रवतः सनिता आसि— तू संरक्षक धनका दाता है ।

३६० युज्याभिः ऊती ववन्म- योग्य साधनोंसे संरक्षण हम प्राप्त करेंगे।

३६१ वेधसः वासयासि— ज्ञानियोंको वसाता है ।

३६१ अस्य अस्तं सुवीरं रयिं पृक्षः— इसके घर उत्तम वीर पुत्रके साथ धन भरपूर हो ।

३६३ स्तवध्यै राधांसि नः आयान्तु— प्रशंसनीय धन हमारे पास आजाय।

३६३ दिव्यः पायुः सदा नः सिषक्तु- दिव्य संरक्षक सदा हमारे पास रहे।

(ऋ० ७।३८)

३६४ पुरुवसुः रत्ना विदधाति— बहुत धनवाला रत्नोंको अपने पास रखता है।

३६५ उत्तिष्ठ— उठो, खडा हो जाओ।

३६५ नृभ्यः मर्तभोजनं आसुवानः— मनुष्योंको मानवोंके योग्य भोजन दो ।

३६६ विश्वेभिः पायुभिः सूरीन् निपातु— सब संरक्षणके साधनोंसे ज्ञानियोंका संरक्षण करे ।

३६९ जास्पतिः रत्नं नः अनुमंसीष्ट- प्रजाका पालक राजा रत्न हमें देनेके लिये मान्यता देवे।

३७० अहिं वृकं रक्षांसि जंभयन्तः— वीर बढनेवाले क्रूर राक्षसोंका नाश करते हैं ।

३७० सनेमि अमीवाः अस्मत् युयवन्- पुराने रोग हमसे दूर हों ।

३७१ हे वाजिनः ! विप्राः अमृता ऋतज्ञाः वाजे वाजे नः धनेषु अवत— हे बलवान् वीरो ! ज्ञानी अमर सत्यमार्ग जाननेवाले वीर प्रत्येक युद्धमें हमें धनोंके लिये सुरक्षित रखें।

(ऋ० ७।३९)

३७२ अग्निः ऊर्ध्वः- अग्निकी ज्वाला ऊपर जाती है ।

३७२ वस्वः सुमतिं अश्रेत्- निवासके उपयोगी धन प्राप्त करनेकी सुबुद्धिका आश्रम किया जाय ।

२७२ रथ्या पथां भेजाते- रथके मार्गसे जाते हैं।

३७२ ऋतं यजाति - सरल कर्म करते रहो ।

३७३ विश्पती विशां स्वस्तये विरोधे ऐयाते- प्रजापालक राजा प्रजाजनोंके कल्याणके लिये राजसभामें जाते हैं । (सुभा० सं० ५२९)

३७४ शुभ्राः मर्जयन्त— शुद्ध वीर अधिक स्वच्छता करते हैं।

३७५ ऊमाः यज्ञियासः-- वीर संरक्षण करते हैं वे पूज्य हैं।

३७५ विश्वे देवाः सधस्थं अभिसन्ति- सब विबुध अपने स्थानमें रहते हैं।

३७७ मर्त्यानां कामं असिन्वन् नक्षन्- मानवोंकी उन्नतिकी इच्छाका प्रतिबंध न करो और उसमें प्रगति करो।

३७७ अविदस्यं सदासां रयिं धात- अक्षय सदा रहनेवाले धनको हमें दो।

३७८ नः उपमं अर्कं यच्छन्तु- हमे उत्तम धन मिले।

(ऋ० ७।४०)

३७९ विदथ्या श्रुष्टिः समेतु- संगठनसे मिलनेवाला धन हमें मिले।

३७९ तुराणां स्तोमं प्रतिदधीमहि- त्वरासे उत्तम कार्य करनेवालोंकी प्रशंसा हम करते हैं।

३७९ अस्य रत्निनः विभागे स्याम- इस धनीके धनके बंटवारेके समय हम वहां रहें।

३८० द्युभक्तं रेक्णः दिदेष्टु- तेजस्वी वीरोंको जो प्रिय धन है वह हमें मिले।

३८१ यं मर्त्यं अवाथः, स उग्रः शुष्मी— जिस मनुष्यकी तुम सुरक्षा करते हो, वह शूरवीर और बलवान होता है।

३८१ सरस्वती ईं जुनति— विद्यादेवी उसे प्रशस्तकर्म में प्रेरित करती है।

३८१ तस्य रायः पर्येता नास्ति— उसके धनको घेरनेवाला कोई नहीं है।

३८२ अयं ऋतस्य नेता- यह वीर तो सत्यका नेता है।

३८२ राजानः अपः धुः- राज्यशासक प्रशस्त कर्मोको धारण करते हैं।

३८२ नः अरिष्टान्- हम विनष्ट न हों।

३८२ नः अंहः अतिपर्षत्- हमें पापसे बचाओ।

३८३ विष्णोः देवस्य वयाः- सर्वव्यापक एक देवके (अन्य देव) शाखा जैसे हैं।

३८३ रुद्रः रुद्रियं महत्वं विदे- रुद्रदेव अपना महत्त्व जाने।

३८४ मयोभुवः अर्वन्तः निपान्तु- सुख देनेवाले संरक्षक हमारी सुरक्षा करें।

(ऋ० ७।४१)

३८७ तुरः राजा मन्यमानः— त्वरासे उत्तम कार्य करनेवाला राजा माननीय होता है।

३८८ प्रणेतः सत्यराधः भगः- उत्तम नेता सच्चे धन वाला भाग्यवान है।

३८८ ददत् धिय उद्‌व- दातृत्व बुद्धिको सुरक्षित रखो।

३८८ गोभिः अश्वैः नृभिः प्रजनय— गौवें घोडे तथा वीर पुत्र पर्याप्त हों।

३८९ इदानीं भगवन्तः स्याम- अब हम धनवान हों।

३८९ वयं देवानां सुमतौ स्याम-हमें देवोंकी प्रसन्नता प्राप्त हो।

३९० सः नः पुर एता भवतु- वह हमारा नेता बने।

३९२ गोमतीः अश्वावतीः वीरवतीः घृतं दुहानाः उषसः भद्राः नः सदं उच्छन्तु- गौवें घोडे और वीर पुत्र युक्त, घी का दोहन करनेवाली कल्याण करनेवालीं उषाएं हमारे घरको प्रकाशित करती रहें।

(ऋ० ७।४२)

३९४ सनवित्तः अध्वा सुगः— बहुत समयसे चला हुआ मार्ग सुगम होता है।

३९५ देवान् सुयजस्व— देवोंका उत्तमरीतिसे यजन करो।

३९६ सः इयत्यै विशे वार्यं ददाति- वह समीपवर्ति प्रजाके लिये स्वीकारने योग्य धन देता है।

३९८ अस्मे इषं रयिं वाजं पप्रथत्- हमें अन्न धन और बल वह देता है।

(ऋ० ७।४३)

३९९ विप्राः देवयन्तः- ज्ञानी देव बननेका यत्न करते हैं।

४०१ देवताता नः मृधः मा कः- युद्धमें हमारे शत्रुओंकी सहायता न कर।

४०१ वसूनां ज्येष्ठं महः आगंतन- धनोंमें श्रेष्ठ धन हमारे पास आजाय।

४०१ समनसः यति स्थ- एक विचारसे यत्न करो।

४०३ रायः युजा सधमादः अरिष्टाः सहसावन्- धनसे युक्त होकर एक स्थानमे रहनेवाले विनष्ट न हों और शत्रुका पराभव करनेके बलसे युक्त हों।

(ऋ० ७।४४)

४९६ मंश्चतो वरुणस्य भ्रभ्रं बभ्रुं उपस्तुवे- घमंडी शत्रुका नाश करनेवाले वीर वरुणके बडे भूरे घोडेका वर्णन करता हूं।

४०६ ते अस्मत् विश्वा दुरिता यवयन्तु- वे हमसे सब पाप दूर करें।

४०८ विश्वे महिषा अमूराः शृण्वन्तु- सब बलवान् ज्ञानी वीर (हमारा भाषण) सुनें।

(ऋ० ७।४५)

४०९ सविता देवः हस्ते पुरूणि नर्या दधानः भूमः निवेशयन् प्रसुवन्- सविता देव अपने हाथमें बहुतसा धन लेकर बहुतोंका निवास करावे और उनको प्रेरणा भी देवे।

४१० सूरः चित् अपस्यां अनुदात्- सूर्यके समान वह कर्म करनेकी प्रेरणा देता है।

४११ सहावा वसुपतिः नः वसूनि आसाविषत्- बलवान् धनपति हमें धन देवे।

४११ सहावा वसुपतिः उरूचीं अमतिं विश्रयमाणः- बलवान् धनपति विशाल प्रगति करनेके कार्योंको विशेष आश्रय देता रहे।

४११ सहावा वसुपतिः मर्तभोजनं रासते— बलवान धनपति मनुष्योंके योग्य भोजन देता है।

(ऋ० ७।४६)

४१३ इमा गिरः स्थिरधन्वने क्षिप्रेषवे स्वधाव्ने वेधसे अषाळ्हाय सहमानाय तिग्मायुधाय रुद्राय भरत— ये स्तोत्र सुदृढ धनुष्यवाले, शीघ्र बाण छोडनेवाले अपनी धारण शक्तिसे युक्त, विशेष धारक; असह्य, शत्रुका पराभव करनेवाले, तीक्ष्ण शस्त्रवाले, शत्रुकों रुलानेवाले वीरके लिये गाओ।

४१४ क्षम्यस्य जन्मनः क्षयेण सः चेतति— पृथ्वी पर जन्मे मनुष्यके उत्तम निवास करनेसे वह प्रसिद्ध होता है।

४१४ दिव्यस्य जन्मनः साम्राज्येन स चेतति— दिव्य जीवनवाले मनुष्योंके साम्राज्यसे वह प्रकाशित होता है।

४१४ सः अवतीः अवन्— अपना रक्षण करनेवाली प्रजाका वह रक्षण करता है।

४१४ दुरः उपचर- द्वारोंपर रक्षक रखो।

४१४ जासु अनमीवः भव— प्रजाओंमें नीरोग हो।

४१५ सहस्रं भिषजा- सहस्रों औषधियां हैं।

४१५ तनयेषु तोकेषु मा रीरिषः- बालबच्चोंकी क्षीणता न हो।

(ऋ० ७।४७)

४१७ शुचिं अरिप्रं मधुमन्तं वयं अद्य वनेम— शुद्ध पापरहित मधुर जल हमें आज मिले।

(ऋ० ७।४८)

४२१ ऋभुक्षणः वाजाः मघवानः नरः— शिल्पियोंके निवासक अन्नवान् बलवान् धनवान् नेता होते हैं।

४२१ ऋभुभिः ऋभुः स्याम— शिल्पियोंके साथ रहकर हम उत्तम शिल्पकार बनें।

४२१ विभुभिः विभ्वः स्याम— वैभवयुक्त पुरुषोंके साथ रहकर हम वैभवयुक्त बनें।

४२१ शवसा शवांसि— बलसे बल बढायेंगे।

४२२ वाजसातौ वाजः अस्मान् अवतु- युद्धके समय बल हमारा संरक्षण करे।

४२३ पूर्वीः शासा ते अभिसन्ति- शत्रुसेना बहुत होनेपर भी उत्तम शस्त्रोंसे वह पराभूत होगी।

४२३ उपरताति विश्वान् अर्यः वन्वन्— अपने उत्तम शस्त्र सब शत्रुओंका पराभव करते हैं।

४२३ विभ्वाः ऋभुक्षाः वाजः अर्यः- वैभवसंपन्न, शिल्पियोंको बसानेवाले बलवान वीर शत्रुओंका पराभव कर सकते हैं।

४२३ शत्रोः नृम्णं मिथत्या कृण्वन्- शत्रुका बल नष्ट करो।

४२४ नः वरिवः कर्तन— हमें धन देदो।

(सुभा० सं० ५९३)

४१४ विश्वे सजोषाः नः अवसे भूत- सब उत्साही वीर हमारी सुरक्षा करें ।

४१४ वसवः अस्मे इषं संददीरन्- निवासक वीर हमें अन्न दें ।

(ऋ० ७।४१)

४२६ दिव्याः खनित्रिमाः स्वयंजाः- वृष्टि जल, कुवेका जल तथा स्वयं बहनेवाला जल ये अनेक प्रकारके जल है।

४२७ राजा वरुणः जनानां सत्यानृते अवपश्यन् याति- राजा वरुण लोगोंके पुण्य पाप देखता हुआ जाता है।

४२७ आपः मधुश्चुतः शुचयः पावकाः मां अवन्तु- जलप्रवाह मधुर रसमय स्वयं शुद्ध और पवित्र करनेवाले हैं वे मेरी सुरक्षा करें ।

(ऋ० ७।५०)

४२९ कुलायत् विश्वयत् नः मा आगन्— स्थानमें रहनेवाला अथवा फैलनेवाला विष हमारे पास न आजाय ।

४२९ अजकाय दुर्दशीकं तिरः दधे— रक्तरोग तथा दृष्टिदोष हमसे दूर हो ।

४२९ त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्- सर्प पांवके शब्दसे मुझे न जाने ।

(ऋ० ७।५१)

४३४ भुवनस्य गोपाः अस्माकं सन्तु- विश्वके संरक्षक हमारी सुरक्षा करें ।

(ऋ० ७।५२)

४३७ अन्यजातं एनः मा भुजेम- दूसरेका किया पाप हमें न भोगना पडे।

(ऋ० ७।५३)

४३९ पूर्वे गृणन्तः कवयः पुरः दधिरे- प्राचीन स्तोत्रपाठक कवि आगे रखे जाते हैं । सन्मान किया जाता है ।

४४० दैव्येन जनेन नः आयातं, वां वरूथं महि- दिव्य जनोंके साथ हमारे पास आओ, आपका धन बडा है ।

४४१ सुदासे पुरूणि रत्नधेयानि सन्ति- उत्तम दाताके लिये अनेक प्रकारके धन मिलते हैं।

(ऋ० ७।५४)

४४२ वास्तोष्पते ! अस्मान् प्रतिजानीहि— हे वस्तुओंके स्वामिन् ! हमें तुम अपने समझो ।

४४१ स्वावेशः अनमीवः भव— अपना रहनेका घर नीरोग हो ।

४४१ द्विपदे चतुष्पदे शं— द्विपाद चतुष्पादके लिये सुख मिले ।

४४१ यत् ईमहे तत् नः प्रतिजुषस्व— जो हमें चाहिये वह हमें प्राप्त हो ।

४४३ वास्तोष्पते ! नः प्रतरणः एधि—हे स्वामिन् ! तू हमारा तारक हो ।

४४३ गयस्फानः— घरका विस्तार करो ।

४४३ गोभिः अश्वेभिः अजरासः स्याम— गौओं और घोडोंसे युक्त होकर हम जरारहित हो जाय ।

४४३ ते सख्ये स्याम— तेरी मित्रतामें हम रहें ।

४४४ वास्तोष्पते ! शग्मया रण्वया गातुमत्या संसदा सक्षीमहि— हे स्वामिन् ! सुखदायी, रमणीय, प्रगति साधक सभास्थान हो ।

४४४ क्षेमे योगे न वरं पाहि— योगक्षेममें हमारे धनका संरक्षण कर ।

४४५ अमीवहा— रोग दूर करनेवाला हो ।

(ऋ० ७।५५)

४४५ विश्वा रूपाणि आविशन्, नः सुशेवः सखा एधि— सब रूपोंमें प्रविष्ट होकर हमारा सुखदायी मित्र बन ।

४४७ तस्करं स्तेनं वा राय- चोर और डाकूपर दौड।

४४९ माता, पिता, विश्पतिः, जनः सस्तु, सर्वे ज्ञातयः ससन्तु- (सुरक्षित नगरमें) माता, पिता, प्रजापालक राजा, सब जनता, सब जातिया सुखसे सोजांय ।

४५१ प्रोष्ठेशयाः वह्येशयाः, तल्पशीवरीः पुण्यगन्धाः स्त्रियः ताः सर्वाः स्वापयामसि- अगनमे, वाहनमें, बिस्तरोंपर सोनेवाली जो उत्तम सुगन्धवाली स्त्रिया हैं वे सब स्त्रिया (सुरक्षित नगरमें) सुखसे सोजाय ।

(ऋ० ७।५६)

४५६ धीरः एतानि निण्या चिकेत— धैर्यवान वीर पुरुष वीरोंके इन गुप्तकार्योंको जानता है। (सुभा० सं० ६२२)

४५७ सा सुवीरा विट्, सनात् सहन्ती, नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु- वह उत्तम वीरता युक्त प्रजा, सदा शत्रुका पराभव करती और अपने पौरुषको बढाती रहती है।

४५८ याम येष्ठाः शुभाः शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्लाः ओजोभिः उग्राः— ये वीर शत्रुपर आक्रमण करते, अलंकारोंसे सुशोभित होते, तेजसे तेजस्वी होते और सामर्थ्यसे उग्र होते हैं।

४५९ व ओजः उग्र, शवांसि स्थिरा— आप वीरोंका बल उग्र है और स्थिर बल हैं।

४५९ वः गणः तुविष्मान्— तुम्हारा गण बलवान् है।

४६० वः शुष्मः उग्रः, मनांसि क्रुध्मी- आपका बल उग्र है और मन क्रोधसे भरे हैं।

४६० धृष्णोः शर्धस्य धुनिः- शत्रुका नाश करनेवाले सांघिक बलका आपका वेग प्रचण्ड है।

४६३ स्वायुधाः इष्मिण सुनिष्का स्वयं तन्वः शुम्भमानाः- ये वीर उत्तम शस्त्र धारण करनेवाले, वेगवान्, आभूषण धारण करनेवाले, अपने शरीरोंको सुशोभित करनेवाले हैं।

४६४ ऋतसापः शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ऋतेन सत्यं आयन्- ये वीर सत्यका पालन करनेवाले, शुद्ध जन्मवाले, स्वयं शुद्ध और दूसरोंको पवित्र करनेवाले हैं, ये सरलतासे सत्यको प्राप्त करते है।

४६५ वः अंसेषु खादय वक्ष सु रुक्माः उपशिश्रियाणा, विद्युतः न रुचानाः, आयुधैः स्वधां अनुयच्छमानाः— इन वीरोंके कंधोंपर आभूषण है, छातीपर अलंकार लटक रहे हैं, बिजलीके समान चमकनेवाले ये अपने शस्त्रोंसे अपनी शक्ति प्रकट करते हैं।

४६६ वः बुध्न्या महांसि प्रेरते- तुम्हारे मौलिक सामर्थ्य प्रकट हो रहे हैं।

४६७ सुवीर्यस्य रायः मक्षु दात, यं अन्य अरावा नूचित् आदभत्- उत्तम वीर्यसे युक्त धन हमें तुरन्त दो, जिस धनको दूसरा कोई शत्रु दबा नहीं सकेगा।

४६८ हर्म्येष्ठाः शिशवः शुभ्राः- राजमहलमें रहनेवाले बालकोंके समान ये वीर गोरे हैं।

४६८ पयोधाः वत्सासः न प्रक्रीळन्तः- दूध पीनेवाले बालकोंके समान ये वीर खिलाडू होते हैं।

४६९ गोहा नृहा वः वधः आरे अस्तु- गोघातक और मनुष्य घातक आप वीरोंका शस्त्र हमसे दूर रहे।

४७० ईवतः अद्वयावी गोपाः- प्रगतिशीलोंका अनन्यभावसे सरक्षण करनेवाला वीर है।

४७१ तुरं रमयन्ति- वीर त्वरासे कार्य करनेवालोंको सुख देते हैं।

४७१ सहः सहसः आनमन्ति- अपनी शक्तिसे साहसी शत्रुको विनम्र करते हैं।

४७१ अररुषे गुरु द्वेषः दधन्ति- शत्रुपर वीर बडा द्वेष करते हैं।

४७२ वसवः यथा रध्रं जुनन्ति, भृमिं जुनन्ति- निवास करानेवाले वीर जैसे समृद्ध मनुष्यके पास जाते हैं वैसे ही भीख मागनेके लिये भ्रमण करनेवालेके पास भी जाते है।

४७२ तमांसि अपबाधध्वं- अन्धकारोंको दूर करो।

४७२ अस्मे विश्वं तोकं तनयं धत्त- हमारे सब बालबच्चोंको सुखमें रखो।

४७४ यत् शूरा जनासः मन्युभिः संहनन्त, पृतनासु नः त्रातारः भूत— जब शूर पुरुष उत्साहसे मिलकर शत्रुपर हमला करते हैं, उन युद्धोंमें तुम हमारे संरक्षक बनो।

४७५ उग्र पृतनासु साळ्हा- उग्रवीर युद्धोंमें शत्रुका पराभव करता है।

४७६ य. असुरः जनानां विधर्ता, वीरः शुष्मी अस्तु- जो बलवान् वीर जनोंका धारण करता है वह वीर प्रबल होवे।

४७६ सुक्षितये अपः तरेम- उत्तम निवास होनेके लिये हम दुःखोंको पार करेंगे।

(ऋ० ७।५७)

४७८ युद्धेषु शवसा प्रमदन्ति, उग्राः अयासः- जो युद्धोंमें अपने बलके कारण आनंदित होते हैं, वे उग्रवीर शत्रुपर आक्रमण करनेवाले हैं। (सुभाषित संख्या ६४८)

४७९ विदथेषु पिप्रियाणाः वीतये बर्हिः आसदत्- युद्धोंमें आनन्दसे भाग लेनेवाले वीर अन्न सेवन करनेके समय इकट्ठे होकर आसनोंपर बैठें।

४८० इमे रुक्मैः आयुधेभिः तनूभिः भ्राजन्ते- ये वीर भूषणों और शस्त्रोंसे सजे अपने शरीरोंसे चमकते हैं।

४८० शुभे समानं अञ्जि कं आ अञ्जते- शोभाके लिये एक जैसा समान गणवेश पहनते इसलिये सुखसे जाते हैं।

४८१ अनवद्यासः शुचयः पावकाः— निष्पाप शुद्ध और पवित्र ये वीर हैं।

४८१ सुमतिभिः प्र अवत- उत्तम बुद्धिसे संरक्षण करो।

४८१ वाजेभिः पुष्यसे प्रतिरत- अन्नोंसे पुष्टी करनेके लिये प्रथम दुःखोंके पार हो जाओ।

४८३ नः प्रजायै अमृतस्य दद्रात- हमारी प्रजाको अपमृत्युसे दूर रखो।

४८३ सूनृता रायः मघानि जिगृत- सत्यनिष्ठा, धन और महत्ता हमें मिलें।

४८४ सर्वताता सूरीन् ऊती आजिगातन- सर्व हितकारी कर्मके समय ज्ञानियोंको संरक्षण मिलता रहे।

४८४ य त्मना शतिनं वर्धयन्ति— जो अकेले ही सैंकडों मानवोंको बढाते हैं।

(ऋ० ७।५८)

४८५ तुविष्मान् दैव्यस्य धाम्नः- बलवान दिव्य धामको प्राप्त करता है।

४८५ साकं उक्षे गणाय प्रार्चत— साथ रहकर अपनी उन्नति करनेवाले संघका सत्कार करो।

४८५ अवंशात् निर्ऋतेः त्रोदन्ति— वंश नाशकी आपत्तिसे वीर बचाते हैं।

४८५ महित्वा नाकं नक्षन्ते— अपने सामर्थ्यसे स्वर्गको प्राप्त करते हैं।

४८६ भीमासः तुविमन्यवः अयासः- बडे शरीरवाले अतुल उत्साही वीर शत्रुपर आक्रमण करते हैं।

४८६ जनूः त्वेष्येण महोभिः ओजसा प्रसन्ति— वीरोंके जन्म तेजस्विता, महत्ता और सामर्थ्यके लिये प्रसिद्ध होते हैं।

४८६ यामन् विश्वः भयते— शूरोंके आक्रमणसे सब भयभीत होते हैं।

४८७ मघवद्भ्य बृहत् वयः दधात— धनवानोंको बडी आयु दो।

४८७ गत अध्वा जन्तुं न तिराति- वीर जिस मार्गसे जाते हैं वह मार्ग किसी प्राणीका नाश नहीं करता।

४८७ स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः तिरेत— स्पृहणीय संरक्षणोंसे हम दुःखसे पार हों।

४८८ युष्माऊतः विप्रः शतस्वी सहस्री-तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हुआ ज्ञानी सैंकडों और सहस्रों धनोंसे युक्त होता है।

४८८ युष्माऊतः अर्वा सहुरिः— आपके द्वारा संरक्षित घोडा शत्रुका पराजय करता है।

४८८ युष्मा-ऊतः सम्राट् वृत्रं हन्ति- आपके द्वारा संरक्षित सम्राट् शत्रुका वध करता है।

(ऋ० ७।५९)

४९१ यं त्रायध्वे यं नयथ, शर्म यच्छत— तुम जिसका संरक्षण करते हो, जिनको योग्य मार्गसे चलाते हो, उसे तुम सुख देते हैं।

४९२ युष्माकं अवसा द्विषः तरति— तुम्हारे संरक्षणसे सुरक्षित हुआ वीर शत्रुको लांघता है।

४९४ यस्मै अराध्वं, वः ऊनोः पृतनासु नहि मर्धति— जिसका तुम संरक्षण करते हो, तुम्हारे संरक्षणसे वह युद्धोंमें सुरक्षित रहता है।

४९६ स्पार्हाणि वसु दातवे नः अवित- स्पृहणीय धन देनेके लिये हमें सुरक्षित रख।

४९८ दुर्हणाय तिरः यः नः चित्तानि अभिजिघांसति, द्रुहः पाशान् प्रतिमुचिष्ट, तं तपिष्ठेन हन्मना हन्तन— अतिक्रोधी और तिरस्कारके योग्य, जो हमारे मनोंको ही मारता है, उस शत्रुके पाशोंसे हमें मुक्त करो और उसे तप्त शस्त्रसे मारो।

४९९ सांतपनाः रिशादस— शत्रुको ताप देनेवाले वीर शत्रुका नाश करें।

५०१ मृत्यो बन्धनात् मुक्षीय— मृत्युके बंधनसे छुडाओ। (सुभा० सं० ६७८)

(ऋ० ७।६०)

५०३ हे सूर्य ! उद्यन् अद्य अनागाः ब्रुवः— उदय होनेपर हमें प्रथम निष्पाप करके घोषित करो ।

५०३ हे अर्यमन् ! तव प्रियासः स्याम— हे आर्य मनवाले ! हम तेरे प्रिय होकर रहें ।

५०४ विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपा— यह सब स्थावर जंगमका संरक्षक है ।

५०४ मर्त्येषु ऋजु वृजिना च पश्यन्— मनुष्योंमें सरल और टेढा कौन है यह देखता है ।

५०५ यूथा इव धामानि जनिमानि वेद— गौओंके झुण्डका पालक उनके नामों और स्थानोंको जानता है ।

५०७ अदितेः पुत्राः अदब्धासः शर्मासः— अदितिके वरिपुत्र किसीसे न दबनेवाले तथा सुख बढानेवाले हैं ।

५०८ इमे दूळभाः— ये वीर न दबनेवाले हैं ।

५०८ अचेतसं दक्षैः चितयन्ति— अज्ञानीको अपने बलोंसे सज्ञान बना देते हैं ।

५०८ सुचेतसं क्रतुं वनन्तः— उत्तम ज्ञानी कुशल कर्म कर्ताको प्रगतिके पथपर चलाते हैं ।

५०८ अंहः तिरः नयन्ति— पापसे पार ले जाते हैं ।

५०८ सुकृतं सुपथा नयन्ति- उत्तम कर्मकर्ताको उत्तम मार्गसे ले जाते है ।

५०९ इमे दिवः पृथिव्याः अचेतसं अनिमिषा चिकित्वांसः नयन्ति- ये ज्ञानी वीर द्युलोक तथा भूलोकको न जाननेवाले अज्ञानीको अविलंबसे ज्ञानी बना देते हैं ।

५०९ प्रवाजे नद्य गाधं अस्ति— निम्न प्रदेशमें नदियाँ अधिक गहरी होती हैं ।

५०९ अस्य विष्पितस्य पारं नः पर्षत्- इस गहरी नदिके पार हमें ये ले चले ।

५१० गोपावत् भद्रं शर्म सुदासे यच्छन्ति— रक्षण करनेका कल्याण तथा सुख दाताको (वे वीर) देते है ।

५१० तस्मिन् तोकं तनयं आदधानाः- उस सुख दायक कर्ममें हम अपने बालबच्चोंको रखकर प्रवीण बनाते हैं ।

५१० तुरासः देवहेडनं कर्म मा- त्वरासे कार्य करते हुए देवोंको बुरा लगनेवाला कर्म न करो ।

५११ यः वेदिं अवयजेत स रिपः वित्— जो वेदीमें यज्ञ नहीं करता वह शत्रु है ।

५११ अर्यमा द्वेषोभिः परिवृणक्तु- अर्यमा शत्रुओंसे हमें दूर रखे ।

५११ सुदासे उरुं लोकं— उत्तम दाताको विस्तृत स्थान मिले ।

५१२ एषां समृतिः सख्यः त्वेषी- इन वीरोंकी मित्रता परस्पर सहायक तथा तेजस्वी होती है ।

५१२ अपाच्येन सहसा सहन्ते— अपने बलसे शत्रुका पराभव करते हैं ।

५१२ युष्मत् भिया रेजमानाः— तुम्हारे भयसे शत्रु भयभीत होते हैं ।

५१२ दक्षस्य महिना नः मृळत— अपने बलकी महिमासे हमें सुखी करो ।

५१३ उरु क्षयाय सुधातु चक्रिरे— विशाल निवास-के लिये उत्तम स्थान बनाते हैं ।

५१४ विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं— सब विपत्तियोंको हमसे दूर करो ।

(ऋ० ७।६१)

५१५ सूर्यः विश्वा भुवना अभिचष्टे— सूर्य सब भुवनोंको देखता है ।

५१५ स मर्त्येषु मन्युं आचिकेत— वह मानवोंमें रहनेवाला उत्साह जानता है ।

५१६ ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः— सत्यनिष्ठ बहुश्रुत ज्ञानी होता है ।

५१६ सुक्रतू ब्रह्माणि अवाथः— उत्तम कर्म करनेवाले ज्ञानोंका रक्षण करते है ।

५१६ क्रत्वा शरदः आ पृणैथे— पुरुषार्थसे मनुष्य अनेक वर्षोंमें पूर्ण होता है ।

५१७ ऋधक् यतः अनिमिषं रक्षमाणा— सत्य-मार्गसे चलनेवालोंका सतत संरक्षण करते हैं ।

५१८ शुष्मः महित्वा रोदसी बद्बधे— इनका बल अपने महत्त्वके कारण विश्वभरमें फैलता है ।

५१८ अयज्वनां मासाः अवीरा आयन्— यज्ञ न करनेवालोंके महिने वीरतारहित अवस्थामें जांयगे ।

(सुभा० सं० ७१२)

५१८ यज्ञमन्मा वृजनं प्रतिराते— यज्ञ करनेमें जिनका मन लगता है वे अपना बल बढाते हैं।

५१९ विश्वा अमूरा वृषणौ— सब ज्ञान प्राप्त करें और बलवान बनें।

५१९ यासु चित्रं न ददृशे, न यक्षं— इन (काव्यों-में) न विलक्षणता है और न बल है (ये गुण काव्यमें होने चाहिये।)

५१९ वां निण्यानि अचिते न अभूवन्- तुम्हारे कार्य अज्ञान बढानेके लिये न हों।

(ऋ० ७।६२)

५२२ सूर्य बृहत् पुरु अर्चिः उदश्रेत्— सूर्य बहुत तेजका आश्रय करता है।

५२२ सूर्यः मानुषाणां विश्वा जनिम- सूर्य मनुष्यों-के जन्मवृत्त जानता है।

५२२ दिवा रोचमान समः ददृशे-दिनमें प्रकाशता हुआ सबको समान दीखता है।

५२२ क्रत्वा कृतः, कर्तृभिः सुकृतः भूत्- पुरुषार्थसे बनाया हुआ यह, कर्तृत्वसे उत्तम कार्यकर्ता बन जाता है।

५२४ चन्द्राः उपमं अर्कं नः आयच्छन्तु— आनन्द देनेवाले विबुध हमें उत्तम पूजनीय धन दें।

५२५ नृणां हेळे मा भूम— मनुष्योंका क्रोध हमपर न हो।

५२६ जीवसे गव्यूतिं घृतेन औक्षतं- दीर्घजीवनके लिये गौओंका आनेजानेका मार्ग जलसे सिंचित करो।

५२६ जने नः आश्रावयतं—लोगोंमें हमारा यश फैले।

५२७ त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु- अपने पुत्रके लिये धन दे दो।

५२७ नः विश्वाः सुपथानि सुगाः सन्तु- हमारे लिये सब मार्ग जानेके लिये सुगम हों।

(ऋ० ७।६३)

५२८ सुभगः सूर्यः विश्वचक्षाः मानुषाणां साधारणः तमांसि समविव्यक्- भाग्यवान् सूर्य, सबका निरीक्षक, सब मनुष्योंके लिये समान रीतिसे अन्धकारको समेट लेता है।

५२९ समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्- सूर्य एक ही कालचक्रको घुमाता है।

५३१ रुक्मः उरुचक्षा दूरे अर्थः तरणिः भ्राजमानः- तेजस्वी सूर्य विशेष रीतिसे देखनेवाला, दूर विराजमान, तारक और प्रकाशक है।

५३१ सूर्येण प्रसूता जनाः अर्थानि अयन् अपांसि कृण्वन्- सूर्यसे उत्पन्न हुए ये मनुष्य अर्थोंको प्राप्त करके उत्तम कर्मोंको करते हैं।

(ऋ० ७।६४)

५३४ सुक्षत्रः राजा वरुणः- उत्तम क्षात्रबलसे युक्त राजा वरुण है।

५३५ महः ऋतस्य गोपा राजाना सिन्धुपती क्षत्रिया- बडे ऋतके संरक्षणकर्ता सिन्धुके स्वामी क्षत्रिय ये दो राजा हैं।

५३७ ऊर्ध्वां धृतिं कृणवत् धारयत्— उच्च धैर्यकी स्थिति करनी और उसको धारण करना।

५३७ ता राजाना सुक्षिती तर्पयेथां- वे दोनों राजा प्रजाका उत्तम निवास करनेवाले और उनकी तृप्ती करनेवाले हैं।

५३८ धियं अविष्टं— बुद्धियोंका संरक्षण करो।

५३८ पुरंधिः जिगृतं— विशाल बुद्धिकी प्रशंसा करो।

(ऋ० ७।६५)

५३९ अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं विश्वस्य जिगत्नु— अक्षय रहनेवाला श्रेष्ठ बल विश्वका विजय करनेवाला है।

५४० असुरा अर्यां क्षितिः ऊर्जयन्ती करतं— बलवान् आर्य वीरोंको सामर्थ्यवान् निर्माण कर।

५४१ अनृतस्य सेतुः- असत्यसे पार होनेका सेतु बन।

५४१ मर्त्याय रिपवे दुरत्येतु- मर्त्य शत्रुका आक्रमण रोकनेकी शक्ति धारण करो।

५४१ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम- सत्यके मार्गसे हम पापोंसे बचें।

(ऋ० ७।६६)

५४४ नमस्वान् शूष्यः स्तोमः-अन्नसे युक्त बलवर्धक यह स्तोत्र है।

५४५ देवाः सुदक्षाः प्रमहसा असुर्याय धारयन्त- उत्तम दक्ष विबुध अपने महत्त्वसे अपनी शक्तिका संवर्धन करते हैं। (सुभा० सं० ७४३)

५४६ स्तिपाः तनूपाः— अपने घरका तथा शरीरका रक्षण करो।

५४८ क्षयः सुप्रावीः अस्तु-- घर सुरक्षित हो।

५४८ यामन् प्र आवीः अस्तु— तुम वीरोंका आना संरक्षक हो।

५४८ नः अंहः अतिपिप्रति- तुम्हारा आना हमें पापोंसे बचावे।

५४९ अदृब्धस्य व्रतस्य स्वराजः राजानः महः ईशते- न दब जानेवाले व्रतको स्वयं स्फूर्तिसे निभानेवाले ये राजा लोग बडे महत्त्वको प्राप्त करते हैं।

५५० सूरे उदिते रिशादसं अर्यमणं प्रतिगृणीषे- सूर्यका उदय होते ही शत्रुनाशक श्रेष्ठ मनवाले आर्य वीरका काव्यगान करो।

५५१ हिरण्यया राया इयं मतिः अवृकाय शवसे, मेधसातये च— सुवर्णमय धनसे युक्त यह मेरी बुद्धि अहिंसक बल बढानेके लिये और धारणावती बुद्धिकी वृद्धिके लिये हो।

५५२ सूरिभिः सह स्याम— विद्वानोंके साथ हम रहें।

५५२ इषं स्वः च धीमहि- अन्न और आत्मबलका विचार करेंगे।

५५३ बहवः सूरचक्षसः अग्निजिह्वा ऋतावृधः विश्वानि त्रीणि विदथानि परिभूतिभिः धीतिभिः येमुः— सूर्यके समान तेजस्वी, अग्निके समान भाषण करनेवाले, सत्यमार्गका वर्धन करनेवाले बहुतसे वीर सब तीनों युद्ध-क्षेत्रोंका शत्रुपराजय करनेके सब साधनोंसे नियमन करते हैं।

५५४ अनाध्यं क्षत्रं राजानः आशत— शत्रुके लिये प्राप्त करना कठिन ऐसा क्षात्रबल राजा लोग प्राप्त करें।

५५४ शरदः, मासं, अहः, अक्तुं ऋचं, यज्ञं विदधुः— वर्ष, महिना, दिन रात्री मंत्रके साथ यज्ञ करते हैं। (सब समय शुभ कर्ममें लगाते हैं।)

५५५ ऋतस्य रथ्यः यूयं ओहते तत् मनामहे— सत्यके पथ प्रदर्शक आप जिसका विचार करते हैं, उसीका हम मनन करते हैं।

५५६ ऋतावानः ऋतजाताः ऋतावृधः अनृतद्विषः घोरासः, वः सुम्नर्दिष्ठमे सुम्ने सूरयः नरः स्याम— सत्यपालक, सत्यके लिये जन्मे, सत्यका संवर्धन करनेवाले, असत्यका द्वेष करनेवाले बडे घोर दीखनेवाले वीरोंके उत्तम घरमें रहनेसे प्राप्त होनेवाले सुखको हम सब ज्ञानी नेता प्राप्त करें।

५५९ तत् देवहितं शुक्रं चक्षुः उच्चरत्— वह देवोंका हित करनेवाला बलवान् शुद्ध आंख जैसा तेज उदय हुआ है।

५५९ पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं— सौ वर्षतक देखें और जीवें।

५६० अदाभ्या द्युमत्— तुम न दब जानेवाले हो इस लिये तेजस्वी हो।

५६१ अद्रुहा ऋतावृधा- द्रोह न करनेवाले और सत्यके बढानेवाले हो।

(ऋ ७।६७)

५६३ नृपती धिष्ण्या— राजा लोग बुद्धिमान होने चाहिये।

५६४ तमसः अन्ताः उपादृशन्— अज्ञानान्धकारका अन्त दिखाई दिया है।

५६५ वसुमता स्वविदा रथेन पूर्वीभिः पथ्याभिः आयातं— धन युक्त सुख देनेवाले रथसे पहिलेके ही मार्गोंसे आओ।

५६७ मे वसूयुं अमृध्रां प्राचीं धियं सातये कृतं- मेरी धन प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली अहिंसक सरल बुद्धिको धन प्राप्त करनेके लिये सुयोग्य बनाओ।

५६७ वाजे विश्वाः पुरंधीः आविष्टं— युद्धके समय सब विशाल बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंका संरक्षण करो।

५६७ शचीभिः नः शक्तं- शक्तियोंके योगसे हमें समर्थ बनाओ।

५६८ आसु धीषु नः आविष्टं- इन बुद्धियुक्त कर्मोंमें हमें सुरक्षित रखो।

५६८ न प्रजावत् रेतः अह्रयं अस्तु- हमारा सुप्रजा उत्पन्न करनेवाला वीर्य क्षीण न हो।

५६८ तोके तनये तूतुजाना:— बालबच्चोंको त्वरासे समर्थ बनाओ।

५६८ सुरत्नासः देववीतिं आगमेम- उत्तम रत्न प्राप्त करके देवोंकी पवित्रता प्राप्त करेंगे।

५६९ मानुषीषु विक्षु अह्ळता मनसा आयातं- मानवी प्रजाओंमें क्रोधरहित मनसे आजाओ।

५७१ गव्या अश्व्याः मघानि पृञ्चन्तः— गौओं और घोडोंसे युक्त धन दे दो ।

५७१ बन्धुं सूनृताभिः प्रतिरन्ते— बन्धु बान्धवोंके साथ होनेवाले झगडे मीठे भाषणोंसे दूर होते हैं ।

५७१ रत्नानि धत्तं, सूरीन् जरतं— रत्नोंका धारण करो, ज्ञानियोंकी सराहना करो ।

(ऋ० ७।६८)

५७४ अरं गन्त— सीधे जाओ ।

५७४ अर्यः तिरः- शत्रुओंको दूर करो ।

५७५ मनोजवो रथः शतोतिः- इच्छाके अनुसार चलनेवाला रथ सैंकडों प्रकारोंसे संरक्षक होता है ।

५७५ रजांसि तिरः प्रेयर्ति- धूलीके प्रदेशोंको दूर रखो।

५७६ वल्गुः विप्रः – सुन्दर रूपवाला ज्ञानी हो ।

५७७ चित्रं भोजनं अस्ति— विलक्षण भोजन है (जो बल बढाता है ।)

५७८ ऊती वर्पः अधि धत्थः— मृत्युसे बचानेवाला रूप तुमने उसे दे दिया ।

५८० यौ शचीभिः शक्ती स्तर्यं अघ्न्यां अपिन्वतं- तुम दोनोंने अपने सामर्थ्योंसे वंध्या गौओंको दुधारू बना दिया।

५८१ एष सुमन्मा कारुः उषसां अग्रे बुधानः- यह बुद्धिमान शिल्पी उषःकालके पूर्व जागता है (और काम करने लगता है ।)

५८१ अघ्न्या पयोभिः इषा तं वर्धत्- गौ अपने दूध रूपी अन्नसे उस अशक्तको बढाती है।

(ऋ० ७।६९)

५८१ वाजिनीवान् नृपतिः रोदसी बद्बधानः-- सेनाके साथ जानेवाला राजा सब विश्वको निनादित करता है ।

५८३ देवयन्तीः विशः गच्छथ- देव बननेकी इच्छा करनेवाली प्रजाके पास (उनकी सहायताके लिये) जा ।

५८५ देवयन्तं शचीभिः अवथः- देव बननेकी इच्छा-वालेका अपनी शक्तियोंसे संरक्षण करो ।

५८८ समुद्रे अवविद्धं भुंज्युं युवं अभिधानैः अश्रमैः अव्याथिभिः पतत्रिभिः दंसनाभिः पारयन्ता— समुद्रमें गिरे हुए भुज्युको तुमने सुदृढ, श्रम न देनेवाले तथा व्यथा न देनेवाले पक्षी जैसे उडनेवाले विमानोंसे और उत्तम योजनाओंसे पार कर दिया ।

(ऋ० ७।७०)

५९१ मनुषः दुरोणे घर्मः अतापि- मनुष्योंके घरोंमें अग्नि जलता है ।

५९३ यत् ऋषीणां योग्याः अश्ववैथे, ओषधीषु अप्सु चनिष्ठं- जो ऋषियोंके भोजनके लिये अन्न होता है वह औषधियोंमें और जलमें होता है ।

५९३ पुरूणि रत्नानि निदधतौ- तुम दोनों अनेक रत्नोंको धारण करते हो ।

५९४ अस्मे जनाय वां सुमतिः चनिष्ठा अस्तु- इस मनुष्यके लिये आपकी सुबुद्धि अन्न देनेवाली हो ।

५९५ कृतब्रह्मः समर्यः भवाति- ज्ञानका प्रचार करनेवाला मनुष्योंका संघटन करनेवाला होता है ।

(ऋ० ७।७१)

५९७ दिवा नक्तं शरुं अस्मत् युयोत- दिनमें तथा रात्रीमें हमारे शत्रुको हमसे दूर रखो ।

५९८ अनिरां अमीवां अस्मत् युयुतं- दरिद्रता और रोगोंको हमसे दूर करो ।

५९८ दिवा नक्तं त्रासीथां-दिन रात हमारा संरक्षण करो।

५९९ ऋतयुग्भिः अश्वैः स्यूमगभस्ति वसुमन्तं आवहेथां— सरलतासे जोते जानेवाले घोडोंसे तुम्हारे तेजस्वी धनसे भरे रथको यहां लाओ ।

६०१ जरसः च्यवानं अमुमुक्तं— बुढापेसे च्यवनको मुक्त किया ।

६०१ अश्वं आशुं पेद्वे निरूहथुः- घोडेको शीघ्रगामी करके पेदुको दिया ।

६०१ अत्रिं तमसः पारं निष्पर्तं— अत्रिको अन्धकारसे पार किया ।

६०१ जाहुषं शिथिरे अन्तः निधार्तं— जाहुषको अन्तमें राज्यपर पुनः बिठलाया ।

(ऋ० ७।७२)

६०३ स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना- उत्तम शोभासे अपने शरीरोंको वीर सुशोभित करते हैं ।

६०३ पुरुश्चन्द्रेण रथेन आयातं— चमकीले रथसे आओ । (सुभा० सं० ८०४)

६०४ पित्र्या सख्यानि, उत समानः बन्धुः, तस्य चित्तं— पितासे चली आयीं मित्रताएं, और समानतासे उत्पन्न होनेवाला बन्धुभाव, इनको भूलना नहीं।

६०७ पाञ्चजन्येन राया आयातं— पाचों जनोंके हित करनेवाले धनके साथ यहा आओ।

(ऋ० ७।७३)

६०८ अस्य तमसः पारं अतारिष्म— इस अन्धकार के पार हम जांय।

६०९ विदथेषु प्रयस्वान्— युद्धोंमें प्रयत्नशील वीर हो।

६११ वीळुपाणी रक्षोहणा संभृता—शस्त्रधारी शत्रुका नाश करनेवाले वीर इकठ्ठे हों।

(ऋ० ७।७४)

६१३ अवसे विशं विशं गच्छथः- रक्षण करनेके लिये प्रत्येक प्रजाजनके पास जाओ।

६१४ युवं चित्रं भोजनं ददथुः- तुम उत्तम विलक्षण पौष्टिक अन्न देते हो।

६१४ सूनृतावते चोदयतं— सत्यमार्गसे जानेवालेको प्रेरित करो।

६१५ उपभूषतं- अपने आपको सुशोभित रखो।

६१५ नः मा मर्धिष्टं— हमें कष्ट न दो।

६१५ पयः दुग्धं- समयपर दूध दुहो।

६१७ छर्दिः ध्रुवं यश यंसतः— उत्तम घर और स्थायी यश दो।

६१८ जनानां नृपातारः अवृकासः- लोगोंके रक्षक हिंसक न हों।

६१८ स्वेन शवसा शूशुवुः- अपने बलसे वे वीर बढते हैं।

(ऋ० ७।७५)

६१९ द्रुहः अजुष्टं तमः अपावः-.दुष्टोंको तथा अप्रिय अंधकारको दूर करती है।

६१९ पथ्या अजीगः- मार्ग प्रकाशसे बताती है।

६१० महे सुविताय बोधि— बडी सुखमय अवस्था प्राप्त करनेका मार्ग जानो।

६२० महे सौभगाय प्रयन्धि- बडे सौभाग्य प्राप्त करनेके लिये यत्न करो

६२० चित्रं यशसं रयिं धेहि- विलक्षण यशस्वी धन धारण करो।

६२० मर्तेषु श्रवस्युं धेहि-मनुष्योंको यशस्वी पुत्र दो।

६२१ दैव्यानि व्रतानि जनयन्त — दिव्य नियमोंको प्रकट करो।

६२२ पञ्च क्षितीः युजाना— पाचों मनुष्य कार्यमें जुडे हैं।

५२२ पञ्च क्षितीः परिजिगाति- पांचो मानवोंके पास जाकर उनको प्रेरित करती है।

५२२ जनानां वयुना अभिपश्यन्ती— मनुष्योंके कार्योंको देखती है।

५२२ दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी- द्युलोककी पुत्री भुवनोंका पालन करनेवाली है।

५२३ वाजिनीवती चित्रामघा वसूनां रायः ईशे- अन्नवाली और धनवाली यह स्त्री धनोंकी स्वामिनी है।

५२३ ऋषिस्तुता मघोनी उच्छन्ती- ऋषियों द्वारा प्रशंसित धनवाली स्त्री प्रकाशित होती है।

६२४ शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति- शुभ्रवस्त्र पहननेवाली यह गौर वर्णकी स्त्री सब प्रकारसे सुंदर रथसे जाती है।

६२४ विधते जनाय रत्नं दधाति- उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यको रत्न देती है।

६२५ देवी देवेभिः दळ्हा रुजत्- देवी देववीरोंके साथ शत्रुके सुदृढ कीलोंको तोड देती है।

६२५ सत्या सत्येभिः दळ्हा रुजत्— सत्यपालन करनेवाली सत्यपालक वीरोंके साथ रहकर शत्रुके सुदृढ कीलोंको तोड देती है।

६२५ देवी उस्रियाणां ददत्— देवी गौओंको देती है।

६२६ गोमत् अश्ववत् वीरवत् पुरुभोजः रत्नं धेहि— गौवों घोडों वीर पुत्रोंके साथ तथा बहुत अन्नके साथ रत्नोंको दे दो।

६२६ पुरुषता नः बर्हिः निदे मा कः— पुरुषोंमें हमारे कर्मोंकी निन्दा न हो। (सुभा० स० ८३८)